हिन्दी साहित्य
सूफी भक्ति की प्रासंगिकता



डॉ. राजेन्द्र यादव

हिन्दी साहित्य :
सूफी भक्ति की प्रासंगिकता

हिन्दी साहित्य :
सूफी भक्ति की प्रासंगिकता

डॉ. राजेन्द्र यादव

आयुष पब्लिशिंग हाउस
दिल्ली

प्रकाशक
आयुष पब्लिशिंग हाउस
1/10825, गली नं. 3, सुभाष पार्क,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
फोन : 011-22822514; 9910189445
Email : rajeev02sharma@gmail.com

प्रथम संस्करण : 2015

ISBN : 978-81-83627-10-3

मूल्य : 375/-

मुद्रक
विकास कम्प्यूटर एण्ड प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

समर्पण

"श्यामलम् साहित्यिक संस्था के संचालक
एवं
पाठक-मंच के सागर प्रभारी
आदरणीय
श्री उमाकान्त मिश्र
जी की साहित्य सेवा को
सादर!"

भूमिका

आज सम्पूर्ण विश्व में धर्म, सम्प्रदाय के तनाव, वैमनस्यता, देशों की सीमाएँ लांघकर एक वैश्विक समस्या के रूप में मानव जाति के सम्मुख आकर चुनौती दे रही हैं। एशिया, यूरोप, अफ्रीका आदि महाद्वीपों के अनेक देशों में आज जातिगत भेद-भाव, साम्प्रदायिकता, खूनी संघर्ष के रूप में मानव जाति के समक्ष मानवतावादी दृष्टिकोण को आहत कर रही है। मुसलमानों के अनेक वर्गों के बीच आज खतरनाक खूनी संघर्ष देखने को मिल रहा है। जिसमें शिया और सुन्नी के संघर्ष में ईरान और ईराक के बीच लाखों लोगों को इस धार्मिक उन्माद में अपनी जान गवाँनी पड़ी है। खाड़ी युद्ध जो ईराक के तानाशाह सद्दाम हुसैन ने पड़ोसी देश कुबैत पर हमला करके शुरू किया था, वह अब तक अपने बदले हुए स्वरूप में और भयानक रूप में 'आई एस आई एस' जैसे मानव जाति के लिए खतरनाक बने हुए हैं। ईराक और सीरिया में जातिगत, सम्प्रदायगत संघर्ष जो वास्तव में धार्मिक न हो करके तेल की आर्थिक लूट के लिए हो रहा है। उसमें स्त्रियों और मासूम बच्चों की बड़ी तादात में निर्मम हत्या की जा रही है। यह स्थिति विश्व के अनेक देशों की सीमाओं के भीतर और बाहर मानवता को कलंकित कर रही है। इसमें भारत के खिलाफ पाकिस्तान द्वारा किया जा रहा मजहबी आतंकवाद में लाखों बेगुनाह लोग मारे जा चुके हैं। आज पूरे संसार में परमाणु युद्ध का सबसे बड़ा खतरा दक्षिण एशिया में भारत और पाकिस्तान पर मंडरा रहा है। वहीं उत्तर कोरिया और दक्षिण कोरिया की स्थिति भी कम खतरनाक नहीं है। इजराईल और फिलिस्तीन के बीच, रूस और जार्जिया के बीच, अफगानिस्तान और तालिबान के बीच, चीन, ताईवान और जापान के

बीच, तथा दक्षिण अफ्रीका के अनेक देशों के बीच जो संघर्ष खतरनाक रूप लेते नजर आ रहे हैं, उनके मूल में ज्यादातर धर्म-सम्प्रदाय के विवाद उभरकर सामने आ रहे हैं। विश्व को मानवता विरोधी इस संघर्ष से बचाने के लिए आधुनिक हथियारों एवं सेटेलाईट के सहारे इंटरनेट से चल रही इस दुनिया को बचाने का, सहेजने का कोई दर्शन नहीं है। विश्व को इस विषम परिस्थिति से निकालने के लिए सूफी दर्शन अपनी मानवीय विचारधारा और आध्यात्मिक खुलेपन के साथ मानवता को बचाने की सामर्थ्य रखता है। बशर्ते सूफीमत को सूफीमत ही रहने दिया जाय न कि उसे किसी कट्टरतावादी विचारधारा में बाँधनें का प्रयास किया जाय।

—डॉ. राजेन्द्र यादव

विषय सूची

1

सूफीमत : उदभव और विकास

'सूफीमत' जीवन का आध्यात्मिक, प्राकृतिक, नैतिक, सामाजिक तथा मानवीय मार्ग सम्प्रदाय है। यह सम्प्रदाय कट्टरवादी इस्लाम से अलग मार्ग के रूप में विकसित हुआ था, जिसमें इस्लामिक कट्टरता की जगह सभी प्रकार के सामाजिक, धार्मिक भेद-भावों से अलग पंथ के रूप में सामने आया, इस सम्प्रदाय के दरवाजे सभी प्रकार के लोगों के लिए खुले थे।

''सूफीमत के उद्‌गम बिन्दु चाहे अन्य धर्मों से भी रहे हों, किन्तु, सम्प्रदाय के रूप में उसका संगठन इस्लाम देशों में ही हुआ। अरब के नगरों में यहूदी-मत, ईसाइयत, हिन्दुत्व, बौद्ध मत और इस्लाम, इन सब धर्मों का मिलन हुआ था। ईरान में इस्लाम का सम्पर्क जरथ्रुस्त्रवाद से भी हुआ। सूफीमत इन सबका समन्वय या योग तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु, उस पर इन सबका कुछ-न-कुछ प्रभाव था। वह ऐसा मत था जो सम्प्रदायगत होकर भी असाम्प्रदायिक हो गया। उसने नबी अवज्ञा, कुरान की अवज्ञा की और उस घाट से उमड़कर बाहर फैलने लगा जिसमें इस्लाम को समेट कर रखने की आशा की गयी थी।'' -(संस्कृत के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर)

हिन्दी साहित्य कोश भाग-एक में 'सूफी' के सम्बन्ध में स्पष्ट किया गया है। कि ''इस्लाम के रहस्यवाद साधक 'सूफी' नाम से प्रख्यात हैं। इन सूफीयों के दर्शन को 'तसव्वुफ' कहा गया है। सूफी ऐसे साधक थे, जो विरक्त, संसार-त्यागी, परमात्मा के प्रेम में बेसुध रहते थे। उनके लिए न इस लोक के प्रलोभनों का कोई अर्थ और न स्वर्ग की ही उन्हें चिन्ता थी। उनकी चिन्ता का एकमात्र विषय परमात्मा था। उसे पाने के लिए उसके साथ 'एकमेक' होने के लिए ये साधक

सभी प्रकार की साधना के लिए प्रस्तुत रहते थे। वैसे प्रेम को इन्होंने सर्वोच्च स्थान दिया है।'' -(संस्कृत के चार अध्याय)

इसी क्रम में 'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों के अनेक मत हैं। कुछ लागों का मानना है कि 'अरबी, फारसी, तुर्की तीनों भाषाओं इस्लामी रहस्यवादी के लिए 'सूफी' शब्द प्रयुक्त है' तथा अन्य विद्वानों के अनुसार 'सूफी मत को ईसाइयों के 'नव्य-प्लेटोवाद' और 'ग्लानिस्तिकवाद' से जोड़ा है। बसरा और बासित के बीच बसने वाले बेबिलोनी इस मत पर विश्वास करते थे।

इस प्रकार सूफी शब्द की उत्पत्ति के बारें विद्वानों के विभिन्न मत हैं-

1. 'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति 'सूफ' से मानते हैं जिसका तात्पर्य 'सफेद ऊन' से है। सूफी लोग सफेद ऊन के मोटे वस्त्र पहनते थे। इनके व्यक्तित्व के बारे में मानना है कि ये लोग सरस, सरल, विकार रहित, तपस्यामयी जीवन व्यतीत करते थे। कुछ विद्वानों का मत है कि सूफी शब्द का सम्बन्ध यूनानी शब्द 'सोफोस' से है, जिसका आशय बुद्धिमान और ज्ञानी व्यक्ति से है।

   'सोफोस' के बारे में यह तर्क दिया जाता है कि यह अंग्रेजी के 'फिलोसोफी' शब्द से लिया गया है, जिसका हिन्दी पर्याय 'दर्शन' होता है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि 'सूफी' का अर्थ 'बुद्धिमान' और 'ज्ञानी' से ही है। यह मत तर्कपूर्ण और संगत भी लगता है।
2. कुछ विद्वान 'सूफी' को 'सफ' से जोड़ते हैं जिसका अर्थ 'पंक्ति' है।
3. 'सूफी' शब्द का सम्बन्ध 'सुफ्फा' से बताया गया है, जिसका अर्थ 'चबूतरा' होता है।
4. कुछ विद्वानों के मतानुसार 'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति 'सफा' से मानते हैं, जिसका अर्थ 'पवित्र व निर्मल' जीवन मार्ग से सम्बन्धित है।
5. 'सूफी' शब्द का सम्बन्ध यूनानी शब्द 'सोफिया' से भी सम्बन्धित है, जिसका अर्थ 'विद्या' से माना गया है।

''यूनानी शब्द सोफिया, सूफ (यानी पंक्ति), सूफ्फा (मदीना की मस्जिद के सामने बने चबूतरे) से व्युत्पत्ति दी जाती है। कुछ लोग, जैसे विद्वानों ने 'तसव्वुफ' और 'सूफीमत' में 'सूफ' (सफेद ऊन) पहनने वालों से इसे प्रचलित मानते हैं। कुछ सूफी यह मानते हैं कि यह सबसे प्राचीन धर्ममत था। आदम

के साथ यह चला। कुछ लोग चौथे खलीफा अली को इस मत के प्रवर्तन का श्रेय देते हैं, चूंकि सूफीमत में कुरान की कई बातें नहीं मिलती। कुछ मुसलमान इसे इस्लामी नहीं मानते, बल्कि अन्य धर्मों से आयातित विचार मानतें है।'' -(भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास, डॉ. नगेन्द्र)

पसमानिकी लोगों से 'सिद्‌दीक्क' शब्द सूफियों ने सीखा। प्रकाश और अंधेरे के द्वित्व का विचार मानियों ने लिया। यह बात मुहम्मद इकबाल ने प्रबन्ध में स्पष्ट की है। ''अंधेरे मनुष्य का कर्म-स्वतंत्र, और अंधेरे से प्रकाश की मुक्ति का अर्थ है प्रकाश द्वारा प्रकाश की आत्मचेतना। कुछ यूरोपिय विद्वान सूफी शब्द को शुद्ध, पवित्र, चुना हुआ(ईश्वर द्वारा) एक ग्रीक शब्द जिससे 'थियोफिस्ट' शब्द आया, उसी का एक अरबी रूप मानते हैं। 800 ईस्वी तक इस शब्द के आस-पास एक रहस्यमय वलय आ गया था-होंठ बंद, आँखे उस स्वप्न के आनंद में अधुमुँदी हो जाती थी इस 'तोसाफी' शब्द को सुनकर।'' (भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास, डॉ. नगेन्द्र)

सूफीमत के प्रादुर्भाव के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि सूफीमत का अविर्भाव यूनानी दर्शन से हुआ है। मार्क्स ने सूफी सिद्धांतो को पूर्ण रूप से यूनानी दर्शन की देन माना है। सूफीमत को आर्यों के धार्मिक विकास के परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुआ भी कहा गया है। कुछ विद्वानों का मत है कि सूफीमत हिन्दुओं के वेदांत दर्शन का इस्लामी संस्करण है, तथा सूफियों की अनेक क्रियाओं पर भारतीय योग की गहरी छाप है। उनके जिक्र पर भारतीय योगियों के प्रभाव को पाया जा सकता है।

इस देश में लगभग 12 वीं सदी के प्रारम्भ में ख्वाजा मुइनुद्‌दीन चिश्ती के आगमन से ही सूफियों का आगमन माना जाता है। सूफियों के चार सम्प्रदाय हैं। जिनमें (1) चिश्ती, (2) सुहरावर्दी (3) कादरी और (4) नक्सबन्दी लोग भारत में आये। इन लोगों का सिद्धान्तवादी नमूना 'सादा जीवन, उच्चविचार' और प्रेम का 'तत्ववाद' था। इनके रहन-सहन और वैचारिक प्रभाव से तत्कालीन भारतीय समाज में व्याप्त विविध प्रकार की धार्मिक, जातिगत, वर्गगत भेद-भावों के साथ राजनीतिक द्वन्द के कारण हो रहे नरसंहार आदि विविधताओं से आम जनता असंतोष एवं परेशान थी। उस हताशा और निराशा में सूफीयों के इस सूफीवाद के प्रति इनका आत्मीय झुकाव बढ़ने लगा, क्योंकि उनके सूफीमत में मानवीय-नैतिक मूल्य (जिसमें पशुता से मानवता की ओर) के महत्व ने इनको

अधिक प्रभावित किया। इस प्रकार अधिक से अधिक लोग सूफीमत की तरफ प्रभावित हुए।

सूफियों में भावविशिष्टता और उससे उत्पन्न क्रियाएँ प्राणायाम आदि भारतवर्ष के प्रभाव स्वरूप ही आई हैं। संसार में पिण्ड के ही अंदर उसकी शोध के सिद्धांत भारतीय योग की कुण्डलिनी और चक्र साधना की देन हैं। तृतीय शताब्दी में ईसाई धर्म प्रचारकों ने अरब में प्रवेश किया और वे नजरान में आकर बस गए। मुहम्मद साहब के समय तक अरब में ईसाईयों से परिचय था। ईसाईयों की तरह इस्लाम में भी ऐकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा हुई। अंतर इतना है कि ईसाई मत में भौतिकता से आध्यात्मिकता का आग्रह है और इस्लाम में भौतिकता से आध्यामिकता का निरूपण है। अरब और भारत के बीच व्यापार का संबंध बहुत पहले से था। ईसा पूर्व दसवीं शताब्दी तक अरबों के साथ इस भारतीय व्यापार का पता चलता है। स्पष्ट है कि इस्लाम के आविर्भाव के बहुत पहले से ही अरब और भारत वर्ष के बीच पारस्परिक यातायात और व्यापार का सिलसिला था। यद्यपि इस्लाम के आर्विभाव के पूर्व मध्य एशिया में इस्लाम धर्म का प्रसार-प्रचार था। इस्लाम की तलवार ने मध्य एशिया को पराजित कर दिया। इस प्रकार मध्य एशिया के बौद्ध, इस्लाम धर्म अपनाने के लिए बाध्य हो गए।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सूफीमत के उद्‌गम और विकास के मूल में इस्लाम रहा है, इस्लामियों द्वारा ही इसका विकास हुआ है, किन्तु भारत में इस पर भारतीय वेदान्त, बौद्ध धर्म, निर्गुनियाँ दर्शन का भी प्रभाव पड़ा है। भारत में तो वेदान्त और सूफीमत की समानता कई संत कवियों, बाउल गायको, शेख फरीद (पंजाबी) या शेख मुहम्मद (मराठी) आदि की रचनाओं में स्पष्ट है।

सूफी साधक प्रेम के द्वारा परमात्मा को पाने में विश्वास करते हैं। परमात्मा उसके लिए प्रियतम और परम सौन्दर्य है। आत्मा उस प्रियतम को पाने के लिए आकुल रहती है। सूफी कवि आत्मा और परमात्मा के इस प्रेम सम्बन्ध का वर्णन आत्माविभोर होकर करते हैं। अपने काव्य के माध्यम से वे परम प्रियतम के प्रति प्रणय निवेदन करते हैं।

'संस्कृति के चार अध्याय' में रामधारी सिंह दिनकर ने सूफीयों के बारे में कहा है कि ''सूफी साधक ईश्वर को निराकार भी मानते हैं और साकार भी। वे ईश्वर को मनुष्य की आत्मा और मानव-जीवन को उस आत्मा का आवरण मानते हैं। प्रायः, प्रत्येक साधक ईश्वर की कल्पना परम सुन्दरी नारी के रूप में

करता है जिस पर वह आशक्त होना चाहता है। सूफी-मत में परमेश्वर साकार सौन्दर्य है और साधक साकार प्रेम।........सौन्दर्य से प्रेम और प्रेम से मुक्ति, यह सूफी-मत के सिद्धान्तों का निचोड़ है। इसी प्रेम की सिद्धि के लिए सूफियों ने इश्क-मजाजी की भी छूट दी, क्योंकि इश्क-मजाजी से इश्क-हकीकी हासिल हो सकता है। वैसे सूफी-मत यती-वृत्ति, वैराग्य-साधना, योग और संयम, सब पर जोर देता है।''

सूफी, कुरान द्वारा प्रतिपादित परमात्मा के स्वरूप को स्वीकार करते हैं। सनातन पंथी इस्लाम की भाँति वे भी 'एकेश्वरवाद' में विश्वास करते हैं, लेकिन वे अपने ढंग से उसका अर्थ करते हैं। उनके लिए 'एकेश्वरवाद' ठीक वही नहीं है, जो इस्लाम में स्वीकृत है। सनातन पंथीयों की तरह सूफी मानते हैं कि जात(सत्ता), सिफत् (गुण) और कर्म में परमात्मा अद्वितीय और निरपेक्ष है। इस्लामी परमात्मा को सृष्टि के सभी पदार्थों से भिन्न मानते हैं, लेकिन सूफी कहते हैं कि इस दृश्यमान जगत में परिव्याप्त एकमात्र सत्ता परमात्मा की है। ऐसा मानने का मतलब यह हो जाता है कि प्रतीयमान जितनी भी सत्ताएँ हैं, वे सभी परमात्मा में अंतर्निहित हैं तथा अखिल विश्व परमात्मा के साथ एक है। सूफी परमात्मा को परम सत्य मानने के लिए एवं साथ ही उसे परम कल्याण और परम सौंदर्य भी मानते हैं।

सूफी सम्प्रदाय में ईश्वर सम्बन्धी दो सिद्धान्त दिखायी देते हैं। इसके आधार पर सूफीयों को दो वर्गों में रखा गया है। एक 'बुजुदिया' और दूसरा 'शुहुदिया'।

बुजुदिया

बुजुदिया वर्ग वहद-तुल-बुजुद के सिद्धान्त से प्रभावित है। इसके प्रवर्तक मुहिउद्दीन इब्नुल अरबी माने गये हैं। इस सिद्धान्त के मूल में संसार में ईश्वर का एक मात्र अस्तित्व है। इसे 'हमावुस्त' कहा गया है जिसका तात्पर्य है 'सब कुछ वही है, सब कुछ उसी में है और सब कुछ उसी से है।' यह दिखायी देने वाला संसार उसी ईश्वर की अभिव्यक्ति के रूप में माना गया है। मनुष्य भी उसी ईश्वर की वाह्य प्रतिकृति है। इस आधार पर सूफी मत में यह स्पष्ट है कि मानव-जीवन का चेतन अंश, ईश्वर के अंश के रूप में ही है। मनुष्य की अपनी सीमाएँ हैं और चेतन अंश को जागृत करने के लिए जीवन के आचार-विचार और व्यवहार में सूफी पंथ एक मार्ग के रूप में दर्शाया गया है। इस अर्थ में कहा जा सकता

है कि मनुष्य और उसकी सृष्टि दोनों ईश्वर के रूप हैं, लेकिन दोनों की सत्यता भिन्न है। जैसे-जीव सत्य तो है, लेकिन परमात्मा की तरह एक मात्र सत्य नहीं है। मनुष्य की इसी भिन्नता को सूफी मार्ग द्वारा एकरूपतामय बनाया जा सकता है। जिसका तात्पर्य है कि सूफी मार्ग द्वारा प्रशस्त जीवन मार्ग पर चलकर ईश्वर की उस परम सत्ता का साक्षात्कार किया जा सकता है।

शुहुदिया

शुहुदिया वर्ग वहद-तु-शुहुद सिद्धान्त से प्रभावित माना गया है। शुहुदिया सिद्धान्त के प्रवर्तक शेख करीमेजीली ने किया था। इस मत के अनुसार भी संसार में परमात्मा की दो सत्ताएँ स्वीकार की गयी है।

(1) रहस्यवादी अध्यात्मवादी ईश्वरीय सत्ता- जो जगत की उत्पत्ति में निहित है।

(2) मुनष्य की या जीवमात्र की सत्ता- इससे परमार्थ सत्ता विकसित होती है।

मनुष्य अपनी सत्ता को सहानुभूति और प्रेम के द्वारा व्यक्त करता है। इसी प्रेम की परिधि में धीरे-धीरे सम्पूर्ण सृष्टि या जगत के साथ ईश्वर भी आ जाता है। मनुष्य- गुण और दोषमय है, जबकि ईश्वर की सत्ता मात्र गुणमय है। सूफीमत में ईश्वर की इसी सत्ता तक पहुँचने के लिए मनुष्य को गुणमय होने का संदेश दिया गया है, जो प्रेम की भाव-भूमि पर अंकुरित होकर लगातार उस परम सत्ता की ओर गति करता है और एक दिन परमात्मा तक पहुँच जाता है। इन गुणों को सूफीमत की भाषा 'शिफ्त' कहा गया है।

सूफीमत के मूल में साधना के द्वारा प्रेम के मार्ग से परमात्मा को पाने की यात्रा माना गया है। इस मार्ग में परमात्मा को ही साधक का परम और अन्तिम लक्ष्य रूप प्रियतम माना गया है। इस परमात्मा रूपी प्रियतम की सत्ता अनन्त और परम सौंदर्य से परिपूर्ण है। जो मनुष्य को दुर्गम मार्ग पर चलकर भी अपनी ओर सहजता से आकर्षित करती है तथा साधक कठिन से कठिनतम् मार्ग पर बेपरवाह होकर आगे बढ़ता जाता है। आत्मा की परमात्मा रूपी प्रियतम की ओर इस नित्य यात्रा के मार्ग को सूफी प्रेम मार्ग के रूप में माना गया है। इस मत की विशेषता है कि इसमें साधक अपने प्रियतम के प्रति प्रेम और प्रणय का लौकिक निवेदन करता दिखायी देता है। प्रेम और प्रणय के इसी लौकिक पक्ष को विस्तार देने के लिए तथा भारतीय समाज के सदृश्य सूफीमत को

स्थापित करने के लिए हिन्दी साहित्य सूफी भक्ति की परम्परा में सूफी काव्य के रचनाकारों ने भारतीय समाज में पहले से प्रचलित लौकिक प्रेम की कथाओं को अपने प्रेम काव्य का आधार बनाकर सूफीमत का भारतीय समाज में काव्यात्मक विस्तार किया।

सूफीमत की आध्यात्मिकता और अलौकिकतामय प्रेम को व्यक्त करने के लिए प्रकृति की शब्दावली की जरूरत होती है और यह शब्दावली या प्रकृति की कोई भाषा मनुष्य के पास भाव और प्रेम के अलावा नहीं है। मनुष्य की तमाम भाषाएँ या उनके शब्द प्रेम और सूफीमत को उस रूप में व्यक्त नहीं कर सकते, जिस रूप में मनुष्य और परमात्मा के बीच संबन्ध निर्मित होता है। भाषा और मनुष्य की इसी मजबूरी से बाहर निकलकर सूफी हिन्दी काव्य के रचनाकारों ने प्रेम के मार्ग को लौकिक होते हुए अलौकिक रूप में व्यक्त किया है। इसमें सूफी साधक के अपने परमप्रिय के प्रति प्रेम की तीव्रता, हृदय की बैचनी और आतुरता की अभिव्यक्ति के माध्यम से सूफी भक्ति को दर्शाया गया है। आत्मा और परमात्मा के मध्य प्रेम की विभिन्न मनोदशाओं का मानवीय चित्रण सूफी साहित्य का केन्द्रीय विषय रहा है।

डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार "हिन्दी सूफी कवियों की जमीन भारतीय है जबकि दक्षिण हिन्दी के सूफी कवियों की जमीन ईरानी। हिन्दी सूफी कवियों की कथाएँ यहाँ लोकप्रचलित कहाँनियों पर आधारित हैं और दक्षिण हिन्दी के कथानक ईरानी काव्य में प्रयुक्त लोक कथाएँ हैं। उनका रंग इसलामी और ढंग ईरानी है। हिन्दी सूफी कवियों ने अपने जनपद की रीति-नीति, मौसम, ऋतुवर्णन, छंद, कथानक रूढ़ियों आदि को इस ढंग से अपनाया है कि उनके काव्य पूर्णतः भारतीय बन गये हैं।"-(हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास)

(क) भारत में सूफीमत का आगमन

भारत वर्ष में सूफीमत के प्रारंभ व प्रवेश की एक निश्चित तिथि बताना कठिन है। लेकिन इसमें संदेह नहीं है कि यह प्रवेश मुसलमानों के आक्रमण के बाद ही प्रारंभ हुआ। मुहम्मद शाह ने 664 ई. में भारत वर्ष पर आक्रमण किया था। उसने मुल्तान, लाहौर और उसके आस-पास के प्रदेश को लूटा था। 711 ई. में मुहम्मद बिन कासिम ने बसरा के शासक हजाज विन युसुफ के आदेश से भारतवर्ष पर चढ़ाई की। यहाँ सिंध से मुल्तान तक के प्रदेश को जीतने वाले आक्रमणकारी आते रहें और दूसरी ओर व्यापारी। इसी समय के आस-पास

दक्षिण भारत में अरब व्यापारियों के दल आना प्रारम्भ हुए। मुसलमानों की सैनिक विजय के साथ इस्लाम का प्रचार तीव्रतर होता गया। कहा जाता है कि जबरदस्ती धर्म-परिवर्तन करने वालों का प्रभाव हिन्दुओं पर नहीं पड़ा, लेकिन शांत और उदार सूफी साधकों ने उनके हृदय पर विजय प्राप्त करना आंरभ कर दिया। ईसा की तेंरहवी शताब्दी में तथा उसके बाद बड़े-बड़े धर्म प्रचारकों, पीरों और सूफी साधकों के नाम सुनने को मिलते हैं। ईसा की चौदहवीं शताब्दी में समाज पर इनका पूरा वर्चस्व रहा। धर्म-प्रचारकों का यह जोर ईसा की पन्द्रहवी शताब्दी एवं सोलहवीं शताब्दी में भारत में दिखायी दिया।

ईसा की 13वीं एवं 14वीं शताब्दी में सूफियों का अधिकार क्षेत्र पंजाब, कश्मीर, डेक्कन, तथा देश के पूर्वी भाग में पूर्णतः स्पष्ट नजर आ रहा था। संतों को इस्लाम धर्म का प्रचारक कहा जाता था। यद्यपि उन्हें केवल इस्लाम का प्रचारक कहना तर्क संगत नहीं है, वस्तुतः इनका स्वभाव अत्यंत उदारवादी दृष्टिकोण को ठहराया गया है। लोग इनसे प्रभावित होकर मुसलमान बन जाते थे, फिर भी इनमें धार्मिक दृष्टि कोण बड़ा उदार था। वे इस्लाम को अवश्य मानते थे, किन्तु विचारधारा की स्वतंत्रता और धार्मिक विधि-विधानों के क्षेत्र में स्वतंत्रता के पक्षपाती थे। विधि-विधानों का उल्लंघन करने के कारण ही धुलनून मिस्त्री एवं मंसूर को कठोरतम दण्ड भोगने पड़े थे। रूमी तक जिस उदात्त भावना के साथ सूफीमत का प्रचार हुआ था, वह धीरे-धीरे जन साधारण के लिए दुरूह होता गया। धार्मिक विधि-विधान, प्रमादपूर्ण जीवन, भिक्षा के साधन, अशिक्षित जनों की प्रवंचना के अनेक मार्गों ने इसमें प्रवेश पा लिया। अंत में शिया, सुन्नी विरोध ने सूफीमत को फारस से सदैव के लिए उखाड़ फेंका। इस संदर्भ में विभिन्न मतों को भी देखा गया कि शिया मत द्वारा ही सूफीमत का फारस से अंत हो गया।

भारतवर्ष के योग साधना का भी सूफियों पर गहरा प्रभाव पड़ा है। आसन, प्राणायाम आदि के लिए सूफी, योगियों के ऋणी हैं। अबू सईद ने योगियों से ही ध्यान-धारणा की बातें सीखी थी। फरीदुद्दीन, शेखसादी अनेक प्रख्यात सूफी भारतवर्ष में आए थे। उनके साथ ही हुज्वीरी आदि सूफी साधक धर्म प्रचार के लिए आए थे। धीरे-धीरे सूफी साधकों ने धर्म प्रचार की ओर और हिन्दुओं को मुसलमान बनाने की ओर ध्यान नहीं दिया। सूफियों का पहली बार एक ऐसी संस्कृति एक ऐसी सभ्यता और एक ऐसे धर्म से पाला पड़ा कि वे उनसे प्रभावित हुए बिना न रह सके। उन पर भारतीय वातावरण का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

मूलतः सूफी साधक ज्ञान-पिपासु थे। उन्होंने भारतवर्ष के अनेक धर्मों और विचारों का अध्ययन किया। धीरे-धीरे एक ऐसा समय आया जब इस्लाम को सर्वश्रेष्ठ मानने की हठधर्मिता उनमें नहीं रही। इसलिए भारत और फारस में उन्हें अनेकानेक पीड़ाओं के साथ कष्ट भोगने पड़े। ईश्वर साधना उनका ध्येय था, प्रेम उनका मूलमंत्र, एकेश्वरवाद में उनकी आस्था थी। उनके लिए हिन्दु-मुस्लिम एक ही ईश्वर की संतान थी। उनकी दृष्टि में जाति-भेद निस्सार था। अनेक हिन्दू भी इसी प्रेम व्यवहार के कारण उन पर श्रद्धा रखते थे।

यद्यपि विद्वानों के विभिन्न मतानुसार अकबर भी एक वैचारिक सूफी था। अबुल-फजल ने आइने-अकबरी में तत्कालीन चौदह सम्प्रदायों का उल्लेख अपने इस ग्रंथ में स्पष्ट किया है। जिसमें चिश्ती, सुहरावर्दी, हबीजी, तूफारी, कर्खी, सकती, जुनेदी कजकनी, फिरदौसी, हयादी, अघमी और हुवेरी आदि प्रमुख हैं तथा उनका विस्तृत उल्लेख भी स्पष्ट किया है। औरंगजेब के पूर्ववर्ती मुगल सम्राटों के शासन काल में भारत में सूफी मत की बड़ी उन्नति हुई। कहा जाता है कि फारस, अरब तथा पश्चिमी एशिया के दूसरे देशों में बौद्धमत का पर्याप्त प्रचार हुआ था। सूफियों ने माला जपने की क्रिया बौद्धधर्म से ली थी। प्रसिद्ध सूफी मंसूर भारतीय चमत्कार विद्या, इन्द्रजाल के अध्ययन हेतु भारतवर्ष में आया था। शेख इस्माईल, नादिरशाह, शाहसुल्तान रूमी, अब्दुलाह, दातागंजबख्श, नरूद्दीन, बाबा आदिमशाहिद, मुहम्मदजली आदि सूफी दरवेश भारतवर्ष में धर्म प्रचार करने आए थे।

सूफीमत एवं इस्लाम के आगमन के कुछ घटनाओं के पूर्व में ही साक्ष्य प्राप्त भी हुए हैं, जिसमें इस्लाम के आविर्भाव में अफगानिस्तान, ईरान, मध्य एशिया आदि में बौद्धधर्म का प्रचार था। अरबों को भी बौद्ध धर्म का परिचय था। अरबी में बौद्ध धर्म की मूर्तियों से ही बुद्द शब्द बना है। अक्कानी के वर्णनों से भी बराह या बिहार मुहम्मिरा के संदर्भ में बौद्धों का परिचय मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि अरब में बौद्ध धर्म का सम्पर्क था। इससे स्पष्ट होता है कि अरब को बौद्ध धर्म और उनके आचारों-विचारों का ज्ञान था। द्वितीय शताब्दी हिजरी के मध्य बसरा में अनेक धर्मावलंबियों के रहने का उल्लेख मिलता है। बासिल बिन अता, जहम बिल सफवान और बौद्ध विद्वानों के शास्त्रार्थ का भी उल्लेख स्पष्ट होता है।

जब सीरिया, मिश्र आदि में देशों में इस्लाम का प्रचार हुआ, तो वहाँ उन पर ईसाई संतों के आचार-विचार व व्यवहार का प्रभाव पड़ा और जब मध्य

एशिया, पूर्वी तुर्किस्तान आदि देशों में इस्लाम का प्रचार हुआ, तो उन पर बौद्ध भिक्षुओं का प्रभाव देखा गया। कहा जाता है कि बुखारा बौद्धधर्म का एक पुराना केन्द्र था। मंगोलियन भाषा में बौद्ध धर्म या मठ को बुखार कहा जाता था किन्तु बुखार शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख बिहार से प्राप्त होता है। दसवीं शताब्दी ईश्वी तक तुर्किस्तान में बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार था।

कट्टर उलमाओं ने माला को इस्लाम विरोधी मानकर घोर विरोध जताया। अबू-उल-जुनैद माला जप रहा था, किसी ने विरोध किया, तो उसने कहा परमात्मा तक पहुँचने में सहायक किसी भी वस्तु का त्याग मैं नहीं कर सकता। कादरी परमात्मा के प्रेम और परोपकार को अधिक महत्व देते थे, अरबी लोगो ने मनुष्य को कर्मों के साथ उत्तरदायी नहीं माना। अशरी ज्ञान और आध्यात्म को अधिक महत्व देते थे। यूनानी चिंतन धारा और दर्शन से प्रभावित इन सभी चिंतनधाराओं का सूफीमत पर प्रभाव पड़ा। इसी प्रक्रिया के चलते अन्य चिंतन धाराएँ भी सूफी प्रभाव से अपने आपको रोक नहीं पायी।

अतः जिस काल में सूफीमत के रूप ग्रहण करने की बात कही जाती है, उस काल के पहले से ही भारतवर्ष के साथ अरबों का घनिष्ठ संबंध स्थापित हो चुका था। राजनीतिक-व्यापारिक संबंधों के साथ-साथ वे यहाँ स्थापित हो चुके थे। राजनीतिक-व्यापारिक संबंधों के साथ-साथ यहाँ के लोगों के रहन-सहन, धर्म, साधन-पद्धति आदि के संपर्क में भी आए। वे यहाँ के बौद्ध संन्यासियों, तांत्रिकों एवं सिद्धपीठों से परिचित हो चुके थे। सिंध में उस काल में बौद्ध धर्म का प्रचार था इसका पता अरबों के विवरण से चलता है। आठवीं शताब्दी के प्रारंभ में बुद्धपुर नाम की एक बस्ती का भी पता चलता है और बौद्धों की उपासना मंदिर नव-बिहार का भी वर्णन मिलता है। बौद्ध धर्म और बौद्ध संन्यासियों से उनका परिचय बहुत पहले हो चुका था।

आधुनिक काल में 1955 ई. के आसपास बिमल कुमार जैन का संग्रह 'सूफीमत और हिन्दी साहित्य' में कुछ बाते सामने आई, हिन्दी अनुसंधान परिषद नई दिल्ली से प्रकाशित इस ग्रंथ के पश्चात् 1956 ई में रामपूजन तिवारी कृत 'सूफीमत साधना और साहित्य' नामक ग्रंथ भी उल्लेखनीय हैं। इन दोनों ग्रंथों में सूफीमत के उद्‌भव और विकास का विस्तृत परिचय दिया गया है तथा हिंन्दी साहित्य में सूफी काव्य एवं कवियों की चर्चा भी विस्तृत रूप से की गई है। जिससे पता चलता है कि इन सूफियों के काव्य से एवं उनकी रचनाओं में हिन्दूरीति-रिवाजों को ध्यान में रखकर, सूफी प्रेम व्यंजना को सम्मिलित कर

अपने सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार किया। जायसी कृत पद्मावती, नूरमुहम्मद कृत इन्द्रावती, उसमान कृत हंसजवाहिर, मुल्लादाऊद की चंदायन आदि कृतियों ने अपने समय में अपनी पूर्ववत् परम्परा को और पुष्ट किया, जिससे पूरे भारत वर्ष में इस सम्प्रदाय का बोल-बाला हुआ। इसके साथ ही कुछ इस्लामी कवियों ने कृष्ण एवं राधा की कथा को अपने अंदाज में व्यक्त किया, जिसमें उनको काफी हद तक प्रसिद्धि मिली। इनमें रसखान प्रमुख माने जाते हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारतवर्ष में जितना सूफी मत का प्रवेश हुआ, उतना ही मुगल आक्रमण के बाद उनके सम्प्रदाय का। प्रेम और सत्ता से निर्मित इस विचार धारा ने भारत पर ही नहीं अपितु भारत जैसे कई देशों पर अपना अधिकार प्राप्त किया है। जैसा कि पूर्ववत में सूफी काव्य की चर्चा हुई कि सूफियों ने बड़े ही आसान तरीके से अपने सम्प्रदाय को हिन्दुओं के जन-जीवन से जोड़ दिया है, अपने प्रेमस्वरूप की परिकल्पना का एक नया ढाँचा तैयार कर हिन्दु राजाओं की कथाओं को अपने सूफी अंदाज में परिणत कर हर हिन्दू को अपना बना लिया। इस प्रकार भारत में सूफी एवं सूफीमत का बोलवाला एक रहस्य की तरह आध्यात्मिक एवं भौतिक अवस्था को लांघकर पूरा करता है।

(ख) भारत में भक्ति आंदोलन

भारत में भक्ति आन्दोलन ईश्वर प्राप्ति के आकर्षण में समाज-सुधार की आधार शिला रखता है। विभिन्न मत सम्प्रदाय, और धर्म हिन्दू, मुस्लिम, बौद्ध, पारसी, ईसाई आदि प्रमुख थे। जो भारत में भक्ति आन्दोलन के पूर्व दक्षिण से 7वीं-8वीं सदी में वैष्णव और शैव के अलगाव को पाटने के रूप में प्रारम्भ हुआ था। यह व्यक्तिगत भक्ति का मार्ग होते हुए, ईश्वर के लिए आत्म-समर्पण के आधार को सामाजिक रूप से स्थापित और स्वीकृत करने की कोशिश भी थी। इस आन्दोलन के मूल में ईश्वर, आदमी और विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों के मध्य समन्वय का विश्वास प्रबल था। भक्ति आन्दोलन की पृष्ठभूमि में उपनिषद, पुराण, गीता आदि का भी बड़ा योगदान दिखायी देता है। शंकराचार्य ने भक्तिमय समाज-सुधार आन्दोलन को प्रमाणित रूप से प्रतिपादित किया था।

भारत में इस्लाम के आगमन के बाद हिन्दू धर्म, संस्कृति में अपनी अस्मिता को बचाने के लिए प्रयास शुरू हुए। इस्लाम की धार्मिक, सामाजिक उदारता के दृष्टिकोण से प्रभावित होकर हिन्दू समाज के निम्न वर्ग में सामाजिक

समानता के बीज अंकुरित हुए। इसका कारण हिन्दू समाज में व्याप्त कठोर जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता, कर्मकांड और देवी-देवताओं की बहुलता प्रमुख रूप से उत्तरदायी थी। भारतीय समाज की वर्ण-व्यवस्था में निम्न वर्ग अपनी सामाजिक उपेक्षा के चलते इस्लाम की ओर सम्मान की दृष्टि से देख रहा था। भारतीय समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग, वर्ण-व्यवस्था की ऊँच-नीच और भेद-भाव के कारण इस्लाम की ओर भी गया। समाज के इसी पलायन को रोकने के लिए तथा समाज में व्याप्त भेद-भाव को समाप्त करने की कोशिश के रूप में भक्ति आंदोलन ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भक्ति आन्दोंलन के संतों ने आरम्भ से ही जाति-व्यवस्था के भेद-भाव की आलोचना की, और सामाजिक समानता स्थापित करने का प्रयास किया।

दक्षिण भारत से प्रारम्भ हुए भक्ति आंदोलनों ने अपने धार्मिक सामाजिक चिंतन में जिन प्रमुख बातों पर जोर दिया और जिन मान्याताओं को समाज में स्थापित करने की नींव रखी, उनकी अधिकांश मान्यताएँ और सामाजिक बदलाव के संदर्भ, सूफीमत के चिंतन से समानताएँ रखते थे। इससे भारतीय समाज को अपने ही सामाजिक दायरे में नवीनता और सम्मान के स्वप्न दिखाई दिये। यहीं भारतीय समाज, इस्लाम की ओर पलायन रोकने में सहायक हुआ।

दक्षिण भारत से भक्ति आंदोलन की सामाजिक एकता से भरे चिंतन को लेकर रामानंद उत्तर भारत में आये। रामानंद के उत्तर भारत आने के पश्चात सिद्ध और नाथ सम्प्रदाय के योगी, जो निम्न जाति-वर्ग से सम्बन्ध रखते थे और सामाजिक समानता की बात करते थे, उनकी विचारधारा को बल मिला। जिसके फलस्वरूप उत्तर भारत में निर्गुण भक्ति का आंदोलन ने जोर पकड़ा।

कबीर ने रामानंद की दक्षिण भारत से लायी भक्ति आंदोलन की अलख को सम्पूर्ण उत्तर भारत में प्रज्ज्वलित किया और समूचा उत्तर भारत कबीरमय हो गया। कबीर की परम्परा में अनेक निर्गुनियाँ संतों ने इस सामाजिक आंदोलन को कबीर के साथ और कबीर के बाद लगातार समाज में स्थापित करने की काव्यमय कोशिश की। वर्ण-व्यवस्था की हजारों साल से चली आ रही कठोर जातिवादी बेड़ियाँ इसी निर्गुण भक्ति आंदोलन के प्रभाव से कमजोर हुई और टूटी भी। भारतीय समाज में पहली बार निडरता से सामाजिक बराबरी की बात रखने का उपक्रम निर्गुण भक्ति आंदोलन ने किया।

भारत के मध्यकाल के इस भक्ति आंदोलन ने भारतीय समाज के इस्लामीकरण को रोका और भारतीय समाज में सदियों से अपमानित, अस्पृश्य,

वर्ग-समुदाय में स्वाभिमान और सम्मान से जीने की हिम्मत दी। तमाम भक्ति धाराएँ इतिहास के किसी कोने में जगह बनाकर आती हैं और चली जाती हैं, लेकिन निर्गुण भक्तिधारा की जीवन्तता और सक्रियता से ही आज के भारत का निर्माण हुआ है। जिस भारत में आज हम रह रहे हैं, वह भारत और उसका संचालक सविंधान सर्वाधिक निर्गुण भक्तिधारा के करीब है।

भारत में सूफी भक्ति आंदोलन को यदि सूक्ष्मता से परखने की कोशिश की जाय तो यह आंदोलन निर्गुण भक्तिधारा का प्रेममय द्वितीय संस्करण दिखायी देता है। समाज की जिन बुराइयों को निर्गुण भक्तिधारा ने अमान्य किया और सामाजिक समानता की बात की, सूफी भक्ति आंदोलन भी उन मान्यताओं का समर्थन करता है। भारतीय मत के दरवाजे सभी जाति, वर्ग, सम्प्रदाय और विभिन्न धर्म के लोगों के लिए भारत में वैसे ही खुले थे, जैसेकि निर्गुण भक्ति में।

गुरू-शिष्य परम्परा का जो सम्मान दक्षिण से रामानन्द ने उत्तर भारत में प्रसारित किया, उसे सूफी संत परम्परा ने भी अपनाया। सूफी मत में गुरू और शिष्य के बीच का सम्बन्ध ही, आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध माना गया है। सूफीमत में प्रेम केन्द्रीय तत्व के रूप में माना जाता है और शिष्य उस तत्व को अपनी संवेदना से निरन्तर प्राप्त करने की कोशिश करते हैं।

सूफीमत में 'गुरू' को 'पीर', 'ख्वाजा' और 'फकीर' की संज्ञा दी गयी है। इस भक्ति में गुरू को प्रेमी, पिया, पति, मुर्शिद आदि उपमाओं से नवाजा गया है। गुरू-शिष्य परम्परा में पीढ़ी-दर-पीढ़ी इस भक्ति का सिलसिला इस परम्परा का द्योतक है।

भारत की गुरू-शिष्य परम्परा सूफी संतों में शामिल होकर सूफी भक्ति आंदोलन को भारतीय बनाने में प्रमुख रूप से दिखायी दी। यही वह प्रमुख तत्व है, जिसने सूफी भक्ति का भारतीयकरण किया। इस भारतीयकरण में गुरू-शिष्य परम्परा के साथ, भारतीय शास्त्रीय संगीत और नृत्य भी सूफी भक्ति में शामिल हुए। इस्लाम की सूफी भक्ति में संगीत और नृत्य को 'कुफ्र' माना जाता है। आज भारतीय सूफी विचारधारा को गैर इस्लामिक मानने की बातें भी उठ रही हैं। वैश्वीक स्तर पर सूफी विचराधारा में इस्लाम की कट्टरता, यह आरोप लगा रही है कि भारतीय सूफी परम्परा, जो संगीत नृत्य को सदियों से अपनी भक्ति का प्रमुख अंग मानती आ रही है, वह इस्लाम के मूल मान्याताओं के विरूद्ध है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय सूफी भक्ति परम्परा का प्रारम्भ इस्लाम

से होकर भारत आया, और भारत में आकर वह भारतीय संस्कृति के ढाँचे में ढल गया।

इस प्रकार भारतीय सूफी भक्ति, इस्लाम की परम्परागत सूफी भक्ति का विशुद्ध भारतीय संस्करण है, जो अन्य देशों की सूफी भक्ति से अलग दिखायी देता है।

(ग) भारतीय परिप्रेक्ष्य में सुफीमत

विद्वानों का मानना है कि सूफीमत का प्रचलन मुहम्मद साहब के लगभग 200 वर्ष पश्चात हुआ। सूफीमत में पीर (गुरू) का स्थान सर्वोच्च होता था। उनका मानना था कि ईश्वर और जीव का सम्बन्ध भय का नहीं, बल्कि प्रेम और सद्भाव का है। सर्वेश्वरवाद में उनकी गहन आस्था थी। संगीत से उनका बेहद लगाव था। सूफीयों की यही बात कट्टर मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दुओं के नजदीक ले आती है।

कुछ विद्वानों के मतानुसार भारत में सिन्ध प्रान्त से सूफी सम्प्रदाय का आर्विभाव माना जाता है। हिन्दी सूफी काव्य पारसी तथा इस्लाम की प्रेरणा लेकर भी भारतीय था। सूफी काव्य को धार्मिक दृष्टि से देखने वालों ने प्रेममार्गी भक्ति की इस मानवीय धारा पर इस्लाम के प्रचार का आरोप भी लगाया। जबकि समकालीन तथ्य यह दर्शाते हैं कि हिन्दी के सूफी रचनाकार किसी भी रूप से इस्लामिक सत्ता से कोई सरोकार नहीं रखते थे। इतिहास साक्षी है कि दिल्ली में इस्लामिक सत्ता ने सूफी संत सरमद की हत्या की थी। भारत में सूफी संत सरमद और ईरान में मंसूर की हत्याएँ यह स्पष्ट करती हैं कि सूफी संतों की भक्तिधारा और मुस्लिम सत्ता में एक निश्चित दूरी थी। ये एक दूसरे के सहयोगी कभी नहीं रहे। हिन्दू सूफी काव्य परम्परा में जिस सूफी भक्ति को हिन्दी साहित्य में प्रेममार्गी भक्तिधारा के रूप में मान्यता दी गयी है, उसके रचनकारों ने मसनवी शैली में अपनी रचनाएँ लिखी हैं। मसनवी शैली हिन्दी साहित्य में हिन्दी के सूफी के रचनाकार लेकर आये। मसनवी शैली की विशेषता है कि इसमें ईश्वर, गुरू के साथ अपने समय के समकालीन बादशाह की प्रशंसा रचना के प्रारम्भ में की गयी है। उदाहरण के लिए मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी रचना 'पद्मावत' में 'साहे वक्त' में शेरशाह सूरी की प्रशंसा की गयी है। मसनवी शैली और भारतीय शैली में गुरू और ईश्वर की वंदना समान रूप से रचनकार करते हैं। उनकी यह शैली, मसनवी शैली कहलाती है।

हिन्दी सूफी प्रेमाख्यानक काव्य परम्परा में अधिकतर रचनाएँ प्रबन्ध काव्य के रूप में लिखी गयी हैं। सम्पूर्ण हिन्दी सूफी रचना साहित्य में पद्मावत को हिन्दी साहित्य के इतिहास और आलोचना में महाकाव्य के रूप में माना है। भारतीय महाकाव्य की कसौटी पर पद्मावत अनेक अर्थ में महाकाव्यत्व को धारण नहीं करता, क्योंकि भारतीय महाकाव्य के लिए निर्धारित शास्त्रीय लक्षणों का इसमें अभाव है। भारतीय काव्य शास्त्र के सिद्धांतों पर पद्मावत कुछ कमजोर कृति के रूप मे माना गया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पद्मावत को फारसी की मसनवी शैली का भारतीय महाकाव्य घोषित किया है। सूफी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानक ग्रंथों में लौकिकता को छोड़ते हुए अलौकिकता का वर्णन किया है। हिन्दी आलोचना ने इसे समाशोक्ति के रूप में स्वीकार किया है। हिन्दी सूफी काव्य परम्परा का प्रतिनिधित्व मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत करता है। पद्मावत की कथावस्तु और घटनाक्रम की प्रतिकात्मकता, इसे एक प्रेमाख्यानक महाकाव्य बनाती है। लोकप्रियता की दृष्टि से भारत में जन-जन में विख्यात पद्मावती के सौन्दर्य चित्रण पर आधारित कहानी को जायसी ने आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध को परिभाषित करने के लिए, आत्मा को रत्नसेन और परमात्मा को पद्मावती के रूप में इस महाकाव्य में विरचित किया गया है। पद्मावती का रूप सौन्दर्य का अलौकिक चित्रण तोता रूपी गुरू के द्वारा, रत्नसेन के समक्ष उद्घाटित किया जाता है तो रत्नसेन या प्रेम में विह्वल एक आत्मा अपने गुरू के द्वारा बतलाए गये, परमात्मा के सौन्दर्य के अलौकिक चित्रण के वशीभूत होकर उससे अनन्य प्रेम करने लगती है। यह प्रेम इतना तीव्र है कि मार्ग में आने वाली किसी भी कठिनाई को पार करके, वह पद्मावती रूपी परमात्मा का साहचर्य पाने को अपना सब कुछ छोड़कर निकल पड़ता है। आत्मा की परमात्मा की ओर यात्रा को सामान्य जन भारतीय समाज के समक्ष लौकिक कहानी के माध्यम से सूफी रचनाकारों ने प्रस्तुत किया। इन रचनाओं में भक्ति और भक्ति के अलौकिक पक्ष के साथ मानवीय जीवन के स्त्री-पुरूष प्रेम और सौन्दर्य को नयी अभिव्यक्ति मिली है। सूफी काव्यधारा के पूर्व निर्गुण भक्तिधारा में भारतीय परिवेश में जिस स्त्री को भक्ति मार्ग की सबसे बड़ी रूकावट नरक का द्वार ठहराते हुए, स्त्री के बिना ईश्वर की प्राप्ति करने के मार्ग बताये गये थे। भारतीय समाज और साहित्य में सूफी भक्तिधारा ने, उसी भारतीय स्त्री को ईश्वर के अनूठे सौंदर्य के रूप में पद्मावती तथा अन्य कहानियों की नायिकाओं के अनुपम सौंदर्य के

रूप में प्रतिष्ठित किया। चाहते तो सूफी भी स्त्री की उपेक्षा भारतीय भक्ति धाराओं से प्रभावित होकर कर सकते थे, लेकिन सूफीयों ने अपने भक्ति मार्ग में समाज और सत्ता की राजनीति स्वीकार नहीं की। सूफी भक्ति धारा की रचनाओं में प्रेम का जो भारतीयकरण किया गया है, वह विश्व स्तर पर अनुकरणीय है। जिस इस्लाम से निकलकर सूफी काव्यधारा भारत पहुँची, उस इस्लाम की कट्टरता, परदा-प्रथा और स्त्री को उपभोग्या मानने की विचारधारा का कोई प्रभाव सूफीयों पर नहीं दिखता है।

हिन्दी सूफी साहित्य में प्रेम के द्वारा जीवन, समाज और ईश्वर तक को सुलभ रूप से पाया जा सकता है। इतने विस्तृत प्रेम को पहली बार भारत भूमि पर प्रस्तावित और परिभाषित किया गया। हिन्दी साहित्य आधुनिक इतिहास में छायावाद में जिस प्रेम के खुलेपन और आत्मीयता के साथ, प्रेम की मानवीयता पूरातन भारतीय सामाजिक रूढ़ियों को तोड़कर, स्वतंत्रता की वकालत करती है, छायावाद की यह प्रेममयी आंधी सूफी भक्तिधारा का नया संस्करण नहीं तो और क्या है!

छायावाद से प्रसूत मानवीय प्रेम और संवेदना जिस ईश्वरीय अनुभूति को भक्ति का नाम लिए बगैर, हृदय में अनुभव के तार झनझनाती है, तो इन तारों से उत्पन्न प्रेम का संगीत सदियों पहले भारतीय समाज में सूफी भक्तिधारा से प्रारम्भ हुआ था।

हिन्दी छायावाद का सम्बन्ध सूफी भक्ति से न मानकर, बंग्ला भाषा के रास्ते पश्चिम के स्वच्छंदतावाद(रोमेन्टिसिज्म) से जोड़ा गया। हिन्दी आलोचना की प्रमाणिकता और संवेदनशीलता यहीं पर संदिग्ध हो जाती है, जब छायावाद के प्रेम को पश्चिम स्वच्छंदतावाद(रोमेन्टिसिज्म) से जोड़ा जाता है, और भारतीय हिन्दी सूफी प्रेम को खारिज किया जाता है। हिन्दी के छायावादी प्रेम के दो सौ वर्ष पूर्व, पश्चिम के स्वच्छंदतावाद (रोमेन्टिसिज्म) से छायावाद का सम्बन्ध उचित प्रतीत होता है और भारतीय जन-मानस को उद्वेलित करने वाली प्रेममार्गी सूफी काव्यधारा का इन्हें स्मरण भी नहीं आता।

भारतीय साहित्य परम्परा के इतिहास का अवलोकन करने पर, जो रोचक तथ्य मानवीय प्रेम के संदर्भ में उभरकर सामने आते हैं, उनसे स्पष्ट होता है कि भारतीय सांस्कृतिक और साहित्यिक परम्परा में प्रेम हमेशा संदेह और अपराध की श्रेणी में दण्डनीय माना गया है। ये परम्परा हिन्दी साहित्य में ही नहीं, वरन् उसके पूर्व संस्कृत साहित्य में भी मिलती है।

भारतीय साहित्य परम्परा में इस्लाम की सूफी भक्ति धारा ने प्रेम को जीवन की जरूरी और पवित्र पक्ष के रूप में उद्घाटित कर सामाजिक रूप से प्रेम को भारतीय संस्कृति में और साहित्य में प्रमाणिक रूप में स्थापित किया।

भारतीय सूफी रचनाएँ अवधी भाषा के माध्यम से भारत में बड़े पैमाने पर लोकप्रिय हुई। इस साहित्य परम्परा में अपने अनुभव, तथ्य, विचार, भाव, प्रेम के माध्यम से रचना मानवीयता के धरातल से प्रारम्भ होकर, किसी प्रचलित कहानी के माध्यम से आध्यात्म के अनुभव सहज बनाती हैं। इसे सूफी भक्ति की अलौकिक उपलब्धि माना गया है। सूफी काव्यधारा में किसी भी प्रकार के खण्डन-मण्डन को स्थान नहीं दिया गया। दोहा, चौपाई, छंद की सहजता और अवधी भाषा का प्रवाह सूफी भक्ति के कथ्य को सीधे समाज से एकाकार करता हैं। हिन्दी और भारतीय साहित्य के विश्व विख्यात रचनाकार तुलसीदास ने जिस भाषा, जिस छंद, काव्य-प्रबन्धात्मकता को आधार बनाकर अपना विश्व प्रसिद्ध ग्रंथ 'रामचरितमानस' लिखा। 'रामचरित मानस' मलिक मुहम्मद जायसी की 'पद्‌मावत' की परम्परा के अनुसरण में लिखा गया महाकाव्य है।

कबीर में उनकी 'निर्गुनियाँ भक्ति' के बीच में जो प्रेम प्रकट होता है। वह प्रेम सूफी काव्य धारा का है, जो कबीर में दिखायी देता है। कबीर जब कहते है कि 'राम मेरा पिव, मैं राम की बहुरिया' -(कबीर ग्रंथावली) जब कबीर के निर्गुण भक्ति धारा में, कबीर निर्गुण राम को अपना पिया मान लेते हैं, और स्वयं उनकी प्रिया बन जाते हैं। प्रेम का यह मानवीय संबन्ध 'सूफी' भक्तिधारा की देन है। जो निर्गुण और सगुण के मध्य की अभिव्यक्ति है।

वेदों, उपनिषदों और शंकराचार्य तथा पुराण-साहित्य में विशेषतः 'श्रीमदभागवत पुराण' के दशवें अध्याय आदि में निर्गुण और सगुण भक्ति के बीच द्वन्द की दीर्घ परम्परा तो दिखायी देती है। पर, निर्गुण और सगुण दोनों के मध्य समन्वय की विराट चेष्टा लेकर भारत में सूफी भक्तिधारा का आगमन हुआ और इसने भारतीय समाज में द्वैत और अद्वैत के द्वन्द को अपने आध्यात्मक स्वरूप से गहरे स्तर पर प्रभावित किया। सूफी भक्ति मार्ग ने उद्धव और गोपीकाओं के बीच निर्गुण-सगुण के द्वन्द का समाधान प्रस्तुत किया। यहाँ यह स्पष्ट है कि सूफी भक्ति धारा निर्गुण और सगुण दोनों के समन्वित रूप में भारत में विकसित हुई। भारतीय साहित्य परम्परा के तीन हजार वर्ष के इतिहास में और पृथ्वी पर समूची मानव जाति को मानवीय प्रेम के मार्ग से ईश्वर तक ले जाने वाली धारा 'सूफी' भक्ति मार्ग है, इससे बेहतर मानव जाति के पास भक्ति का कोई विकल्प नहीं है।

इस प्रकार भारत में सूफीमत की लोकप्रियता उसके मानवीय जीवन के साथ नजदीकी से विस्तृत हुई और दूसरा पक्ष भारतीय सूफीमत के दरवाजे सभी जातिय और पंथ, सम्प्रदाय के लोगों के लिए खुले होना भी बड़ा कारण था। भारत मे आज भी सैकड़ों वर्ष बाद सूफी संतो की दरगाहों पर सभी सम्प्रदायों के लोगों का प्रेम उमड़ता हुआ दिखायी देता है। सूफी सम्प्रदाय के इसी मार्ग से भारतीय गंगा-जमुनी तहजीब का जन्म हुआ, जो भारतीय समाज की एकता और भाई-चारे की सदियों से मिशाल के रूप में हमारे सामने है।

(घ) ईरान व अरब के परिप्रेक्ष्य में सूफीमत

हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास ग्रंथ में डॉ. बच्चन ने ईरान के सूफी काव्य के इतिहास के बारे में कहा है कि "ईरान में वास्तवीक सूफी काव्य का प्रारम्भ 11वीं शताब्दी से होता है और 18वीं शताब्दी में अपने उत्कर्ष पर पहुँचकर समाप्त हो जाता है। इस समय ईरान अरबी खलीफाओं के सांमती दबाव से मुक्त हो गया था। इसके फलस्वरूप राष्ट्रीयता का जोर बढ़ा और सूफीयों ने भाषा के स्तर पर भी अपने को स्वतंत्र कर लिया और ईरान की धरती की अपनी भाषा को अपनाया। सूफी काव्य में रहस्यवादी भावना भी आयी। किन्तु उस समय इस रहस्य-भावना ने प्रगतिशील भूमिका अदा की और मनुष्य की एकता का प्रतिपादन किया। सामंती शासन में उन्हें कभी अच्छी नजरों से नहीं देखा गया" -(बच्चन सिंह हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास)

भारत के अलावा ईरान के सूफीमत में भी प्रेम को ही परमात्मा प्राप्ति का मूल आधार माना गया है। भारतीय सूफीमत और ईरानियन सूफीमत में जो मूल भिन्नता है वह भारतीय सूफीमत मानवीय प्रेम के द्वारा सूफीमार्ग पर आगे बढ़ता है, जो अपने चरम पर पहुँच कर स्वतः ही परमात्मा में लीन हो जाता है। सूफीमत की यह विशेषता ईरान के सूफीमत में नहीं है।

2

भारतीय उपमहाद्वीप में सूफी सम्प्रदाय के विविध रूप

सूफीवाद भक्तिकाल की एकमात्र ऐसी भक्ति पद्धति है, जो आज सदियों बाद अपना आकर्षण समाज में बनाये हुए हैं। इस मत की मानवीयता और सामाजिक समानता तथा सभी प्रकार के भेद-भावों से भिन्न सोच रखने के कारण सूफी सम्प्रदाय ने भारतीय समाज में अपनी गहरी उपस्थिति बनायी हुई है। सूफी भक्ति और विचारधारा में मानव-मूल्यों के प्रति गहरी निष्ठा दिखायी देती है। सूफी सम्प्रदायों का प्रारम्भ चार पीरों से माना गया है। जिसमें 1. हजरत मुर्तजाअली, 2. ख्वाजा हसन बसरी, 3. ख्वाजा हबीब आजमी और 4. अब्दुल वाहिद बिन जैद कूफी प्रमुख हैं।

उपरोक्त चारों सूफी सम्प्रदाय और उनके संस्थापक अपना सिलसिला हजरत मुहम्मद और उनके परिवार से मानते हैं। सूफी सम्प्रदायों के दुनियाँ में सैकड़ों फिरके पायें जातें हैं। ये फिरके कहीं-ना-कहीं से अपना सिलसिला हजरत मुहम्मद से जोड़ते हैं। मध्यकाल में सूफीमत एवं सम्प्रदाय अबुल फजल द्वारा रचित आइने अकबरी में स्पष्टतः दिखाई देता है। अकबर के शासन काल में उनके नौ रत्नों में से अबुल फजल प्रमुख रत्न थे, उनके द्वारा तत्कालीन सूफी सम्प्रदायों को उन्होंने स्वीकारा है। जिसमें चिश्ती, सुहारावर्दी, हबीवी, तफूरी कर्खी, सकती, जनैदी, काकजी, फिरदौसी, जैद, हयादी, अधमी और हुवेरी।

भारत में सूफी संत परम्परा में चार प्रमुख सूफी सम्प्रदाय माने गये हैं-

1. चिश्ति सम्प्रदाय
2. कादरी सम्प्रदाय
3. सुहरावर्दी सम्प्रदाय
4. नक्शबन्दी सम्प्रदाय
5. अन्य सम्प्रदाय।

भारतीय सूफी सम्प्रदायों में चिश्तिया, कादीरिया, सुहरवर्दिया सम्प्रदाय अपना सिलसिला असन-अल-वसरी से मानते हैं और भारतीय सूफी नकशबन्दिया सम्प्रदाय अपना सिलसिला हजरत मुहम्मद साहब के बाद, उन्हीं के इशारे से खलीफा बनाये गये 'अबुवक्र' से मानते हैं। सूफीमत के इन सिद्धांतो में साधना पद्धति और भक्ति के विभिन्न क्रिया-कलापों में पर्याप्त भेद पाया जाता है।

उपरोक्त सूफी सम्प्रदायों में किसी भी प्रकार की कोई पाबन्दी नहीं है। वर्णित सूफी सम्प्रदायों में ब्रह्मचर्य पालन अनिवार्य नहीं है। सूफी सम्प्रदाय के साधको को पारिवारिक जीवन के निर्वाह करने की पाबन्दी नहीं थी।

चिश्ती सम्प्रदाय

भारत में प्रचलित और सामाजिक रूप से स्वीकृत सूफी सम्प्रदायों में चिश्ती सम्प्रदाय का महत्व सदियों से आज भी सर्वोपरि हैं। भारत में चिश्ती सम्प्रदाय की सामाजिक स्वीकृति और प्रभाव इतना ज्यादा है कि आज भी भारतीय लोग हजरत ख्वाजा मुईनउ्द्दीन चिश्ती, बाबा फरीद एवं हजरत निजामुद्दीन औलिया आदि को बड़ी शिद्दत से याद किये हुए हैं। अमीर खुसरों के लिखे कलाम भारतीय संगीत की सूफी पहचान सदियों बाद भी बनी हुई है। अपने गुरू और पीर हजरत निजामुद्दीन औलिया के लिए लिखे, उनका कलाम आज भी भारत में गूँजता है-

"छाप तिलक सब छीनी रे, मोसे नैना मिलाय के।" -*(अमीर खुसरो)*

गुरू-शिष्य परम्परा में पूरी पृथ्वी पर प्रचलित आध्यात्मिक पंथों, सम्प्रदायों में अमीर खुसरो जैसा शिष्य और हजरत निजामुद्दीन जैसे गुरू होने का उल्लेख नहीं मिलता। इस संसार में किसी भी पंथ में ऐसा गुरू-शिष्य संबंध नहीं देखा गया, जिसमें गुरू के समाधि लेने पर शिष्य ने तत्क्षण अपने प्राण त्याग दियें हो। हजरत निजामुद्दीन औलिया की मृत्यु पर अमीर खुसरो ने यह कहते हुए प्राणत्यज दिये थे-

"गोरी सोवत सेज पर, मुख पर डारै केश।
चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहुँ देश।।" -(अमीर खुसरो)

भारत में चिश्ती सम्प्रदाय के प्रवर्तन के सम्बन्ध में अनेक मतभेद भी पाये जाते हैं। कुछ लोग इस सम्प्रदाय को ख्वाजा इसहाक शामी चिश्ती से जोड़कर उन्हें ही भारत में इसका प्रवर्तक मानते हैं और कुछ लोग उनके शिष्य ख्वाजा अबु अब्दाल चिश्ती को इसका प्रवर्तक स्वीकार करते हैं। उपरोक्त तथ्यों के समानान्तर भारत में चिश्ती सम्प्रदाय का प्रामाणिक प्रवेश और प्रारम्भ ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती के साथ माना गया है। ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती का जन्म सन् 1141 ई0 में आज के 'सीरिया' देश के संजर शहर में हुआ था। इसी कारण ख्वाजा को 'ख्वाजा संजरी' भी कहा जाता है।

इन्होंने नीशपुर, मक्का, मदीना और खुरासा की यात्राएँ की थी। तत्कालीन अनेक संतो से इनका संबंध था। अंत में ये गजनी चले गए और 1192 ई. में शहाबुद्दीन गौरी की सेना के साथ में दिल्ली आए वहाँ इल्तुतमिश ने इनका भव्य स्वागत किया और इनसे वही रहने का आग्रह किया, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। ये 1195 ई. में अजमेर गए और वहीं स्थायी रूप से रहने लगे।

इनके अनेक नाम भारतीय उपमहाद्वीप में प्रचलित हैं। जैसे- गरीब नवाज, सुल्तान-ए-हिन्द, ख्वाजा संजरी, चिश्ती अजमेरी और अजमेर वाले ख्वाजा साहब आदि इनके प्रसिद्ध नाम हैं। सन् 1236 ई0 में अजमेर में ख्वाजा साहब ने समाधि ली थी। इनके गुरू या पीर 'ख्वाजा उस्मान चिश्ती हारूनी या हरवानी' थे। मक्का-मदीना के बाद पूरे विश्व में ख्वाजा गरीब नवाज अजमेरी का आस्ताना सभी धर्मों, सम्प्रदायों के लोगों की आस्था का सदियों से केन्द्र बना हुआ है।

इस सम्प्रदाय के प्रसिद्ध संतों में 'ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी', पाकपत्तन के 'बाबा फरीद' तथा 'निजामुद्दीन औलिया' माने जाते हैं। विश्व में चिश्ती सम्प्रदाय इन्हीं संतो की वजह से सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ। भारतीय समाज में आज भी इन संतो की मजारें, दरगाहें हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, जैन आदि विभिन्न सम्प्रदायों के लोगों की आस्था का केन्द्र बनी हुई हैं।

चिश्ती सम्प्रदाय के सिलसिले में दीक्षित सूफी संतों की परम्परा आज भी जीवित हैं और सामाजिक रूप से सम्माननीय है। मध्यकाल के लगभग सभी सूफी संतों की दरगाहों पर संगीतमय मजलिस आयोजित होती हैं। जिनमें इन संतों की कहानियाँ संगीत के साथ गूँजती हैं। इस सम्प्रदाय की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसके साधक को चालीस दिन मस्जिद में या एकान्त कमरे में

व्यतीत करने पड़ते हैं। जिसमें दिन-रात अपने पीर के द्वारा बतायी गयी इबादत करनी पड़ती है, जिसे 'चिल्ल' कहते हैं और उस स्थान को जहाँ इबादत की जाती है उस स्थान को 'चिल्ला' कहते हैं।

निजामी और साबिरी सम्प्रदाय, चिश्ती सम्प्रदाय के अन्तर्गत आते हैं। निजामी का प्रारम्भ हजरत निजामुद्दीन औलिया से और साबिरी का प्रारम्भ हजरत अलाउद्दीन साबिरी (कलियर) से माना जाता है।

कादरी सम्प्रदाय

कादरी सम्प्रदाय का प्रारम्भ ईराक के बगदाद से अब्दुल कादिर अल-जिलानी, द्वारा किया गया था। इनका जन्म सन् 1078 ई० जिलान (फारस) में हुआ था। इनकी मृत्यु सन् 1166 ई0 में हुई थी। आज भी पेशावर से दिल्ली तक के लोग इनका नाम बड़े आदर से लेते हैं। दिल्ली का सुल्तान सिकन्दर लोधी इनका ही शिष्य था। इस सम्प्रदाय के संतों मे भावानान्मेष की प्रधानता थी। इस सम्प्रदाय के लोग प्रायः अपनी टोपी में गुलाब का फूल लगाए रहते हैं। यह फूल इस सम्प्रदाय में अत्यंत पवित्र माना जाता है। कादरी सम्प्रदाय के दो उपसम्प्रदाय हैं 1. रजाकिया 2. वहाबिया। इसी सम्प्रदाय में प्रसिद्ध संत शेख मीर मुहम्मद मियाँमीर के प्रिय शिष्य नत्थेमियाँ की भी बड़ी ख्याति है। कादरिया सम्प्रदाय के अन्तर्गत कुमेशिया शाखा का प्रचार-प्रसार बंगाल में हुआ। बहलोल शाही, शाखा का प्रचार रावलपिंडी के आस पास हुआ। मुकीमशाही शाखा का लाहौर के आसपास और नौशाही शाखा का पश्चिमी भारत में कई स्थानों में प्रचार हुआ।

अब्दुल कादिर-अल-जिलानी की मृत्यु के तीन सौ वर्ष बाद कादरी सम्प्रदाय भारत आया। भारत में कादरी सम्प्रदाय के प्रर्वतक मोहम्मद गौस थे। ये जिलानी जी के वंशज थे। भारत में मोहम्मद गौस के बहुत शिष्य हो गये थे। कहते हैं कि इनकी शिष्य परम्परा में शाहजहाँ का पुत्र दाराशिकोह भी था, जो मोहम्मद गौस को अपना गुरू मानता था। मुगल सल्तनत के दौर में ही कादरी सम्प्रदाय में अनेक फिरकों में बट गया था, जिसमें बहलुल शाही, नौशाही, मुकीम शाही एवं केशर शाही आदि।

कादरी सम्प्रदाय, चिश्ती सम्प्रदाय से भिन्न सूफी सम्प्रदाय है। चिश्ती सम्प्रदाय, जो नृत्य और संगीत को प्रमुखता से अपनाने का जोर देता है, कलाम, नज्म, मनकवत, कव्वाली आदि इस सम्प्रदाय में संगीत के स्वरों में सुनायी देते

हैं, जबकि कादरी सम्प्रदाय में संगीत के लिए कोई स्थान नहीं है। कादरी सम्प्रदाय से उत्पन्न फिरकों में नवशाही उपसम्प्रदाय में संगीत को स्थान दिया गया है। यह कादरी सम्प्रदाय का भारतीयकरण है।

सुहरवर्दिया सम्प्रदाय

सुहरावर्दी सम्प्रदाय का स्थान भारत में चिश्ती सम्प्रदाय के बाद माना जाता है। भारत में इसका प्रवर्तन करने वाले बहाउद्‌दीन जकरिया ने किया। ये मुल्तान (पाकिस्तान) के रहने वाले थे। इस सम्प्रदाय का इससे पूर्व के बारे में अनेक वैचारिक मतभेद मिलते हैं। ख्वाजा हसन निजामी जैसे कुछ विद्वान ऐसे भी हैं जो मानते हैं कि सुहरावर्दी सूफी ही सर्वप्रथम भारत में आए थे, और वे सिंध में आकर बस गए। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक के रूप में शिहाबुद्‌दीन सुहरावर्दी माने जाते हैं। जबकि कुछ लोग शेख जियाउद्‌दीन को मानते हैं तथा कुछ इनके पिता शेख अब्दुल नजीब को इस सम्प्रदाय के प्रर्वतक मानते हैं।

सुहरावर्दी सम्प्रदाय के संत सिन्ध में आकर रहने लगे थे। इस कारण सिन्ध और मुल्तान 11वीं शताब्दी से ही इस सम्प्रदाय के केन्द्र रहे हैं। इस सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार सिन्धु, पंजाब, गुजरात, बिहार, बंगाल आदि तक था। इन स्थानों पर इनके अनेक केन्द्र रहे हैं। दक्षिण में हैदराबाद, बीजापुर, और पेन्कोन्डा में भी इनका प्रचार, प्रसार था। बाशरा सुहरावर्दियों की विचारधारा का प्रवर्तन सैय्यद जलालुद्‌दीन सुर्खपोश शाहमीर बुखारा के निवासी थे, और उन्होने सिन्ध को अपना प्रचार केन्द्र बनाया था। इन्हीं के पौत्र अहमद कबीर मखदूते में जहानियाँ नाम से प्रख्यात थे। उन्होंने मखदूमी शाखा का प्रवर्तन किया था। इन्हीं के वंशज मीरान मुहम्मदशाह ने मीरान शाही शाखा चलाई थी। इसी वंश की चौदहवीं पीढ़ी में हाफिज मुहम्मद इस्माइल ने इस्लामीशाही शाखा को जन्म दिया था।

भारत में इस सम्प्रदाय के प्रमुख संतो में सदरूद्‌दीन (बहाउद्‌दीन के पुत्र), शेख अहमद माशुक, सैयद जलालुद्‌दीन मखदूमें जहानियाँ आदि प्रमुख थे। इस सम्प्रदाय में भी आगे चलकर अनेक उपसम्प्रदायों का जन्म हुआ, जिनमें क्रमशः जलाली, मकदूमी, मीरनशाही, दौलाशाही आदि प्रमुख थे।

इस सम्प्रदाय की एक विशेषता थी कि जो लोग इस सम्प्रदाय को अपनाना चाहें, उन्हें मुर्शिद (गुरू) के आदेश से सबसे पहले अपने सभी पापों का प्रायश्चित करना पड़ता था। इसके बाद ही उन्हें इस सम्प्रदाय में प्रवेश मिलता था। इस

सम्प्रदाय में रोजा, नमाज आदि को चिश्ती सम्प्रदाय की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाता था। इस सम्प्रदाय के लोगों में कपड़ों से स्वयं को ढकने का अनोखा प्रचलन था, जो इस सम्प्रदाय के संतो और उनके शिष्यों में प्रत्यक्ष दिखायी देता था। इसका एक दुष्परिणाम यह हुआ कि इस सम्प्रदाय के मानने वाले लोगों में सामाजिक रूप से परदा-प्रथा अत्यधिक कठोर रूप में घर कर गयी।

इस शाखा के लोग आज भी लाहौर के आसपास मिलते हैं। इसी वंश के दौलतशाह ने दौलतशाही शाखा का प्रवर्तन किया इस शाखा का प्रचार पंजाब में खूब हुआ। बेशरा सुहरावर्दियों की लालशाह बांजियाँ और रसूलशाही नामक दो शाखाएँ प्रमुख हैं। पहली शाखा के प्रवर्तक लाला साहब बाज है। वे स्वतंत्र प्रकृति के व्यक्ति थे। वे इस्लाम की मान्यताओं को विशेष महत्व नहीं देते थे। वे मदिरा के भी प्रेमी थे।

सुहरावर्दी सम्प्रदाय के अनुयायियों में परदा-प्रथा का प्रचलन अन्य सूफी सम्प्रदायों की अपेक्षा एक सामाजिक जरूरत से ज्यादा दिखायी देता है।

नक्सबंदी सम्प्रदाय

सूफी सम्प्रदाय में नक्शबंदी सम्प्रदाय का प्रारम्भ ख्वाजाबहाउद्दीन नक्शबन्द ने चौदहवीं सदी में प्रारम्भ किया था। सोलहवीं सदी में इस मत के सूफी संत 'ख्वाजा बाफी बिल्ला बेरंग' भारत में आये। भारत में इनके आने से नक्शबन्दी सम्प्रदाय का प्रसार अधिक हुआ। इस सम्प्रदाय की बड़ी व्यापक प्रतिष्ठा रही हैं। तुर्की, चीन, भारत, जावा, आदि देशों मे भी इस सम्प्रदाय के अनुयायी पाए जाते हैं। ये अपने शेख (गुरू) के आदेश पर भारत आये थे। दिल्ली में उन्होनें अपना प्रचार प्रारंभ किया। भारतवर्ष में इस सम्प्रदाय का प्रारंभ एवं प्रभाव अहमद फारूकी के द्वारा हुआ। इनका जन्म सरहिंद में 1563 ई. में हुआ। जहाँगीर के शासनकाल में इन सम्प्रदायों का बड़ा जोर था। पर स्वयं जहाँगीर इनसे अप्रसन्न था। जहाँगीर ने इन्हें कैद भी कर लिया था, और इसी कारण इन्होंने अपने परिवार वालो को अफगानिस्तान भेज दिया था। डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार जनसाधारण की रूचि इस सम्प्रदाय की ओर आकर्षित नहीं हुई। सूफी सम्प्रदाय के अंतर्गत नक्सबंदी सम्प्रदाय सबसे अधिक निर्बल और प्रभावहीन रहा इस सम्प्रदाय के आठ नियम प्रख्यात है- श्वास में चैतन्य, चरणो में दृष्टि, यात्रा, एकान्तवास, ईश्वर-स्मरण, ईश्वर के साथ एकांत गमन, ईश्वर का ध्यान, और हाल या आत्मविस्मृति।

इस पंथ की सूफी भक्ति की विशेषता है कि इसके संत ईश्वर-अल्लाह का नाम होठों में लगातार बुदबुदाते हुए उच्चारित करते रहते हैं। अकबर के द्वारा स्थापित 'दीन-ए-इलाही' मत का नक्शबन्दी सम्प्रदाय ने कड़ा विरोध किया था। इस सम्प्रदाय के द्वारा इस्लाम के दो सूफी मतों 'बजूदी' और 'सहूदी' दो पंथो में जो गहरे मतभेद थे, उसे नक्शबन्दियों ने दूर किया और दोनों में समन्वय स्थापित किया। मासूम नाम के नक्शबंदी सूफी संत के शिष्यों में औरंगजेब का नाम भी आता है, जो उस समय मुगल सम्राट था। कहते हैं कि हिन्दुओं पर इस्लाम को लादने के लिए इन्हीं सूफी संत जी के इशारे पर औरंगजेब ने हिन्दुओं पर जजिया कर लगाया था।

अन्य सम्प्रदाय : इन प्रमुख सूफीमत संम्प्रदायों के अलावा भारत में मुगलकाल के दौरान अनेक अन्य सम्प्रदाय भी उपजे थे, जो स्थान विशेष पर आज भी कहीं-कहीं देखने को मिलते हैं। जिनमें कुछ निम्न हैं-

शत्तारी सम्प्रदाय

भारतवर्ष के प्रमुख सूफी सम्प्रदायों में इसका अपना एक विशिष्ट स्थान है। इसके प्रवर्तक फारस के शेख अब्दुल्ला शत्तारी है। इनकी मृत्यु मालवा में 1406 ई. में हुई। मुहम्मद गौस इसी सम्प्रदाय के संत हुए हैं। वे 'मंझन' के गरू तथा 'हुमायूँ' के दीक्षागुरू थे। इस सम्प्रदाय के प्रति मुगल बादशाहों की बड़ी श्रद्धा थी। इस सम्प्रदाय वालो में मैं हूँ और मैं एक हूँ का सिद्धांत मानते हैं। ये फना की अवस्था को नहीं मानते। 'शाहपीर बहाउद्दीन जौनपुरी' और 'मीर सैय्यदजली कोलाम' इस सम्प्रदाय के प्रसिद्ध संत हुए।

'शतार' शब्द एक विशिष्ट साधना से संबंधित है इसके द्वारा फना और बका की प्राप्ति जल्दी हो जाती है, जौनपुर (उत्तर प्रदेश), मांडू (मध्य प्रदेश) आदि इस सम्प्रदाय के प्रख्यात केन्द्र थे।

मदारी सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय का भारत में प्रवर्तन करने वाले शाहमदार बदीउद्दीन थे। यह मूलतः 'उवेसी' सम्प्रदाय ही है। 16वीं शती. मे उत्तर भारत विशेषकर उत्तर प्रदेश में इस का बडा प्रचार हुआ था। अब्दुल कद्दूस गंगुई और शाह मदार महान संतो में गिने जाते हैं। शाह मदार शाहर से आए थे पहले वे अजमेर में

रहे, बाद में उन्होंने कानपुर को अपना प्रचार क्षेत्र बनाया। 1542 ई. मानिकपुर में इनकी मृत्यु हो गयी, वहाँ आज भी इनकी मजार पर भव्य मेला लगता है।

उवेसी, कलंदरी या मेहदवीं शाखा और आंदोलन के प्रवर्तक 'मीर सैम्यद मुहम्मद जौनपुरी' थे। उन्होंने स्वयं को महदी या मेंहदी घोषित किया। कालपी वाले शेख बुरहान की शिष्य परम्परा में इनका स्थान बताया जाता है। मलिक मुहम्मद जायसी इन्हीं के शिष्य बताये जाते हैं। कलन्दरी शाखा के सूफी संत अत्यंत सहिष्णु और भ्रमणशील थे। भारत में इस शाखा का प्रवेश नज्मुद्दीन कलन्दर के साथ हुआ। ये सदैव 'हूँ' का उच्चारण किया करते थे। हजरत जूलनून मिस्त्री को 'मलामती' शाखा का प्रवर्तक माना जाता है। इस शाखा की सबसे बड़ी विशेषता, विचारों की स्वंतत्रता थी। मादक वस्तुओं का सेवन, संगीत वाद्य, नृत्य, चमत्कार, प्रदर्शन और नियंत्रित जीवन इनके सम्प्रदाय के आकर्षण थे। इन सम्प्रदायों का प्रभाव अपनी सरल ईश्वरोन्मुखी भावना के कारण जन समुदाय में विशेष प्रभाव पड़ता रहा और समाज के निम्न धरातल के व्यक्ति जिन्हें हिन्दू समाज में विशेष सुविधाएँ नहीं थी, इन सम्प्रदायों में दीक्षित होते रहे।

विभिन्न मतानुसार स्पष्ट होता है कि इनका संपूर्ण उत्थान मुगल काल में ही हुआ। अकबर, जहाँगीर जैसे अनेक मुगल सम्राट सूफी पीरों के परम भक्त थे। शाहजहाँ का पुत्र दाराशिकोह तो मुस्लिम और हिंदु रहस्य ज्ञान का विद्वान था। उसने सूफीमत और वेदान्त का गंभीर अध्ययन किया। तदुपरांत उसने दोनों मतों के गूढ़ सिद्धांतो की तुलनात्मक विवेचना के बारे में बतलाया कि इनमें कोई तात्विक अंतर नहीं है। कलेवर अलग है, परन्तु आत्मा एक ही है। बहादुरशाह भी शाह होते हुए एक संत से कम न थे। उनकी सभी कविताओं में सूफीमत के उच्च सिद्धातों की बड़ी विशद व्याख्या मिलती है।

भारत में मध्यकाल में सूफीमत का उत्थान हुआ। मुगलकाल में यह उत्थान पूर्णता को प्राप्त हुआ। इन सभी सूफी सम्प्रदायों में गुरू परम्परा और कुछ विशिष्ट वाह्यचारों में ही अंतर था। इन सम्प्रदायों में आध्यात्मिक नेता को शेख, मुरशिद, या पीर कहते थे। मुसलमानों में स्वाभाविक रूप से इन्हें सम्मान मिलता था। हिन्दू समाज के लोग भी इनका पूरा सम्मान करते थे। कहा जाता है कि, हिन्दुओं ने तलवार के आगे गर्दन झुका दी थी, परन्तु तलवार से विश्वास तो उत्पन्न नही किया जा सकता अतः उस कार्य को सूफी संतो ने पूर्ण किया मृत्यु के अनन्तर इन संतो के समाधि स्थान, दरगाह या मजारें बनी हुई हैं।

दिल्ली, आगरा, अजमेर, फतेहपुर सीकरी, चन्देरी, सागर, पानीपत, धामौनी, जतारा, रायसेन, ललितपुर, ऐरच, जबलपुर, मुम्बई, बहराइच, जौनपुर, अकबरपुर, बाराबंकी, रायबरेली, मुल्तान, हैदराबाद, आदि स्थानों पर अनेक पीरो के समाधि स्थल और दरगाह दर्शनीय तीर्थ बने हुए हैं। इन स्थानों पर प्रायः उर्स हुआ करते हैं। हिन्दुओं में मूर्ति-पूजा के साथ तीर्थाटन का प्रचार-प्रसार था। मुसलमानों पर भी इसका प्रभाव पड़ा और वे भी समाधि-स्थलों की यात्राएँ करने लगे और इन समाधि स्थलों को मुस्लिम तीर्थ के रूप में मानते हैं और तीर्थाटन करते हैं।

सूफियों में कुछ संत पूर्णतः संन्यासी जीवन बिताते थे। सैय्यद अशरफ जहाँगीर को संसार से विराग हो गया, तो उन्होंने बादशाहत का त्याग करके सूफीमत में दीक्षा ले ली। एक मुहावरें के अनुसार 'आबे खा रहे तो बेहतर, दरवेशे खा रहे तो बेहतर' ये संत ईश्वर के पक्के भक्त होते थे ये प्रायः विरक्त जीवन व्यतीत करते थे। प्रेम ओर ईश्वरीय विरह की अनुमति ओर ज्ञान इनके लिए सर्वोपरि था। इनमें ज्ञान प्राप्ति की अभिलाषा व्याप्त थी। अध्ययनशीलता, विद्वता, ओर कभी आश्चर्यपूर्ण जादू-टोना आदि के कार्यो के कारण इनकी कीर्ति का विस्तार हुआ। इन दरवेशों की करामातोंकी कथाएँ भी बड़ी ही रोचक हैं। इन करामातों ने भी साधारण जनता को आकृष्ट करने में पर्याप्त योगदान दिया।

भारत में अद्वैतवादी दर्शन अत्यंत प्राचीन है। शंकरचार्य ने दसवीं शताब्दी में इसमें पुनः प्राण प्रतिष्ठा का महान अनुष्ठान किया। शंकराचार्य के ब्रह्म-सूत्र के मध्ययुगीन समस्त भारतीय दार्शनिक सिद्धांतो पर इस दर्शन की छाप अवश्य लगी हैं। एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद में साधारण लोग विशेष भेद नहीं मानते। मध्ययुग में उत्तरीभारत में गोरखपंथी योगियों के योग-सिद्धांत की बडी धूम थी। योगमत की प्रबलता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि जिसे मध्ययुगीन कवि सूरदास नन्ददास आदि ने अपने भ्रमरगीतों में योगमत और प्रेमशक्ति का द्वन्द्व दिखाते हुए भक्ति को श्रेष्ठ रूप में प्रतिपादित किया है। तुलसी ने भी खींझकर कहा था- 'गौरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग।' कबीर पर योग संप्रदाय की पूरी छाप पड़ी थी। योग उनकी साधना का अंग था। योगियों की ध्यान धारणा, प्राणायाम, सहज-समाधि आदि का प्रचार-प्रसार था। गोरखनाथ ने हठयोग को प्रमुख साधन माना था। इस प्रकार योगी शरीर में ही त्रिवेणी की स्थिति मानते थे।

प्रसिद्ध इतिहासकार रोमिला थापर ने अपने ग्रंथ भारत के इतिहास में सूफीमत के भारत में आगमन के संदर्भ में लिखा है कि ''अरबों तुर्कों तथा

अफगानों के आगमन से उनके साथ भारत में एक बिल्कुल नया धर्म-इस्लाम आया। मुस्लिम धर्माचार्यों के अतिरिक्त, धार्मिक क्षेत्र में इस्लाम का मूल प्रभाव फारस से मुस्लिम सूफीयों का आगमन था। सूफी पहले सिन्ध और पंजाब में बसे और वहाँ से धीरे-धीरे उनकी शिक्षाएँ गुजरात, दक्खन तथा बंगाल में पहुँची। प्रारम्भ में भारत में सूफी रहस्यवाद की फारसी विचारधारा के प्रचारक थे। परन्तु बाद में भारतीय और इस्लामीय विचारों के सम्मिश्रण से एक भारतीय विचारधारा का जन्म हुआ। सूफी एकान्त में रहते थे, और ईश्वर को देखने पाने का साधन ढूढ़ने में अपना समय व्यतीत करते थे। मुस्लिम धर्माचार्य उन्हें बहुधा नापसन्द करते थे, क्योंकि उनके विचार से सूफी पद्धतियाँ और विश्वास अधिक प्रगतिशील थे। परन्तु भारत में उन लोगों को सूफी विचारों से सहानुभूति और रूचि हुई, जिनकी रूचि रहस्यवाद एवं तपस्या की ओर थी। इसके तत्काल बाद की शताब्दियों में भक्ति सम्प्रदाय पर सूफी सम्प्रदाय का उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा।'' -(रोमिला थापर)

सिन्ध और पंजाब में सूफी संप्रदाय के आगमन से स्थानीय भारतीय समाज में इस्लाम की रूढ़िवादी विचारधारा से अलग सूफीवाद की सहजता और मानवीयता ने भारतीय समाज को अपनी ओर आकर्षित किया। सूफीवाद में जो सबसे ज्यादा सामाजिक आकर्षण की बात थी। वह था भारतीय समाज में व्याप्त ऊंच-नीच और अस्पृश्यता से भिन्न सभी के लिए अपनत्व और प्रेम की भावना प्रमुख थी। वर्ण-व्यवस्था के भेद-भाव से बाहर निकलने के लिए भारतीय समाज में जो कश्मकश थी उसे सूफीवाद से नयी ऊर्जा मिली। लोग जाति-वाद एवं धार्मिक, सदियों पूरानी वेणियों को तोड़कर, बड़ें पैमाने पर लोग सूफीयों के साथ आने लगे।

इस प्रकार धीरे-धीरे सूफीयों का प्रभाव भारतीय समाज में लगातार बढ़ता गया। जिसके दरवाजे इस मानवीय नये तसव्वुफ के आरंभिक काल से ही सूफी और तसव्वुफ की व्याख्याएँ की जाती रही हैं। इन व्याख्याओं ने सूफीमत के अर्थ को, और अधिक जटिल बना दिया था।

फरीदुद्दीन असार के समय में 'तजकिरातुल्प औलिया' नामक ग्रंथ में तसव्वुफ की सत्तर परिभाषाओं को उल्लेख किया है। परिभाषाओं की जटिलता का कारण यह है कि सूफीमत इस्लाम के अंतर्गत कोई ऐसा सुसंघटित सम्प्रदाय नहीं है कि उसके मतों और सिद्धांतो को एक सुसंघटित और नियमित प्रणाली के अंतर्गत रखा जाय।

प्रारंभ में सूफियों का कोई सम्प्रदाय नहीं था। खुद साधक व्यक्तिगत रूप से साधना में लीन रहते थे और कालांतर में उनके सम्प्रदाय बन गए। इसके साथ उनके मत और सिद्धांत भी बने। सूफी साधक इस्लाम के विभिन्न सम्प्रदायों के चक्कर में नही पड़ते थे। ये साधक अत्यंत उदार थे और धार्मिक तथा सम्प्रदायिक बन्धनों के प्रति उदासीन रहा करते थे। सूफी शब्द की अनेक परिभाषाएँ दी गई हैं। अपनी-अपनी दृष्टि से उसे स्पष्ट करने का भी प्रयास किया गया है। अलहुजविरी का कथन है कि सूंफियों के लिए सूफी-सिद्धांत सूर्य से भी अधिक स्पष्ट है। उन्हें किसी प्रकार की व्याख्या की आव्यश्ययकता नहीं है।

अबुल हसन अलनूरी के अनुसार सूफीमत संसार के प्रति विरक्ति और परमात्मा के प्रति प्रेम के गंभीर धार्मिक भावों का प्रकाशन है। अरबी-फारसी के ग्रंथो में दी गई सूफीमत की परिभाषाएँ ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ी रोचक हैं। उनका मानना है कि सूफीमत की परिभाषा नहीं दी जा सकती।

जालालुद्दीन रूमी ने अपनी मसनवी में एक हाथी के विषय में एक कहानी कही है- जिसे कुछ हिन्दू अंधेरे कमरे में प्रदर्शित कर रहे थे। बहुत से लोग जुड़कर अंधकार में अपने हाथों से टटोलकर यह जानना चाहते थे कि वह किस प्रकार है, एक ने उसकी सूड़ टटोली और कहा यह जनवर पानी के नल के समान है, दूसरे ने उसका कान टटोला और कहा कि वह अवश्य ही एक बड़ा पंखा था। तीसरे ने उसके पैर टटोलकर कहा कि वह अवश्य ही एक खंभे के समान था। और चौथे ने उसकी पीठ टटोली और कहा कि वह एक बड़े सिंहासन के समान था।

सूफीमत की परिभाषा करने वालो की भी यही दशा होती है। वे वही अभिव्यक्ति करने की चेष्ठा करते है। जो उन्होंने स्वयं अनुभव किया हो और कोई भी ऐसा कल्पनीय सूत्र नहीं है, जिसमें प्रत्येक प्रकार की व्यक्तिगत और निकटतम धार्मिक अनुभूतियों का समावेश हो सके। ये परिभाषाएँ सूफीमत की कुछ विशिष्टताओं और उसके कुछ पहलुओं पर सुगम और संक्षिप्त प्रकाश डालती है। जिसके कुछ उदाहरण प्रस्तुत है-

सूफीमत यह है कि- 'सूफी द्वारा ऐसे कार्यों का प्रतिपादन हो, जो केवल परमात्मा को ही ज्ञात हो और वह सर्वस्व व सदैव परमात्मा के संग में उस ढंग से रहता हो, जो केवल परमात्मा को ही ज्ञात हो।'

सूफीमत पूर्णरूप से आत्मानुशासन है। न किसी वस्तु का अधिकारी होना और न किसी वस्तु के अधिकार में होना ही सूफीमत है। सूफीमत नियमों और शास्त्रों से बनी हुई कोई प्रणाली नहीं है, बल्कि एक नैतिक अवस्था है, अर्थात् यदि यह एक नियम होता है, तो शिक्षा द्वारा ग्रहण किया जा सकता है, किन्तु इसके विपरीत यह अवस्था है। अतः इस कथन के अनुसार अपने को परमात्मा की नैतिक प्रकृति के अनुसार बनाओं और परमात्मा की नैतिक प्रकृति नियमों व शास्त्रों द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती है।

वास्तव में स्वंतत्रता और उदारता तथा आत्म-विग्रह का अनुभव ही सूफीमत है। सूफीमत कई अर्थों को मिलाने वाला एक शब्द है और उसकी प्रमुख रूप-रेखाओं का चित्रण करने में व्यक्ति को एक प्रकार का संपूर्ण चित्र ही बनाना पड़ता है, जो किसी हद तक पद्धति का प्रतिनिधित्व नहीं करता। सूफियों का कोई वर्ग नहीं है, एवं उनकी कोई नियमबद्ध प्रणाली नहीं है। उनके तरीके व पथ जिनके द्वारा वे परमात्मा को खोजते हैं, संख्या में उतने ही हैं, जितनी मनुष्य की आत्माएँ। सूफीमत के सारतत्व का सर्वोत्तम प्रदर्शन इसके सर्वोत्कृष्ट प्रकार में है जो तपसी और भक्तिमय होने की अपेक्षा विश्वासवादी और चिंतनशील अधिक होता है। जिस प्रकार ईश्वर की प्रशंसा शब्दों के माध्यम से सम्यक रूप में नही की जा सकती, उसी प्रकार ईश्वर और जीव के संबंधों या तसव्वुफ को भी परिभाषा मे बाँधना कठिन है। फिर भी कहा जा सकता है कि तसव्वुफ उस तरीके का नाम है जिस पर खुलूस, बफा, तस्लीमों-रजा के साथ चलने वाले का व्यक्तित्व परमतत्व को अपने दिव्य चक्षुओं से दर्शन द्वारा नैकट्य प्राप्त कर लेता है, या यों कहिए कि सूफीमत पुर्णरूप से आत्मानुशासन है।

सूफी वही है जो परमात्मा की ओर गतिमान रहता है, जिसे पथ-पदर्शक द्वारा लक्ष्य दिया जाता है, जो उसके विरह में संन्यासी होकर भी प्रसन्न रहता है, और जो संसार को छोड़कर परमात्मा की ओर मुड़ जाता है। फारसी साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि सूफीमत या तसव्वुफ ने फारसी साहितय में प्राण फूँक दिये थे। सूफी साधना प्रेम पर आधारित है अबू हसन अल हुज्वेरी का कथन है कि वह शख्स जो मुहब्बत के वास्ता से मुसफ्फा होता है- सूफी है और जो शख्स दोस्त की मुहब्बत से गर्क़ हो, गैर दोस्त से बरी हो वह सूफी होता है।

अतः कहा जा सकता है कि इस मत का इतिहास 7 वीं सदी के आस-पास से शुरू होता है। यद्यपि सूफीमत के आविर्भाव का मूल कारण इस्लाम की

कट्टरता है। इसी कट्टरता की प्रतिक्रिया के रूप में सूफियों की सहज स्वाभाविक प्रेम-साधना का विकास हुआ। इस्लाम की कट्टरता से समाज को उबारने और ईश्वर के मार्ग पर चलने की आजादी के रूप में सूफीमत विकसित हुआ। इ अर्थ में सूफीमत का उदय इस्लाम से हुआ है और इसका कारण संकीर्णता से व्यापकता की ओर नियमों और वंदिसों से स्वतंत्रता की ओर मजबूरी से आत्म-सम्मान की ओर ले जाने से हुआ है।

उस समय के इस्लामी शासकों की धर्मान्धता और विलासता के साथ ही राजनीति, धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ भी इस मत के विकास में सहायक रही हैं।

अनेक विद्वानों के मतानुसार 'आदिम' को प्रथम सूफी ठहराया गया। कुछ ने 'अब्राहम' को और कुछ ने 'हजरत मुहम्मद साहब' को प्रथम सूफी स्वीकार किया। कुछ विद्वानों के कथानुसार हजरत मुहम्मद ने अपने अनुयायियों को दो प्रकार के उपदेश दिये हैं। एक संदेश जनसाधारण को दिया है- जो कुरान शरीफ में संग्रहीत है 'इल्म-ए-सफीना' कहलाता है और दूसरे प्रकार का संदेश कुछ विशिष्ट अधिकारी व्यक्तियों को दिया जो 'इल्म-ए-सीना' कहलाता है, इस कोटि के व्यक्ति अधिकारी सूफी कहलाते हैं।

वस्तुतः इस बात का ठीक-ठीक पता नहीं चलता कि सूफी शब्द का किस व्यक्ति के नाम के साथ सर्वप्रथम संबंध है या प्रयोग हुआ है। सुहरावर्दी सम्प्रदाय के अनुसार पैगम्बर की मृत्यु के दो सौ वर्ष बाद ही इस शब्द का आविर्भाव हुआ है। सूफी सम्प्रदाय के विषय में अन्य विद्वानों के मतानुसार यह शब्द और मत पैगम्बर के समय से अथवा उससे भी पहले से चलता आ रहा था।

3

भारतीय सूफी संत परम्परा तथा हिन्दी सूफी काव्य परम्परा

ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती (सन् 1141-1236 ई.)

भारतीय सूफी संत परम्परा का आगाज हजरत ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती से प्रारम्भ होता है। चिश्ती परम्परा की भारत में नींव आपने ही रखी। भारत में सूफी भक्ति का तसव्वुफ हजरत मोइनुद्दीन से ताल्लुख रखता है। इनका जन्म सन् 1141 ई. में खुर्सन प्रान्त के संजर गांव (इरान) में हुआ था। मोइनुद्दीन चिश्ती के पिता सैयद गियासुद्दीन हसन और माँ बीबी माह-ए-नूर थी। इनके दादा हजरत मूसा करीम तथा परदादा हजरत इमाम हुसैन थे।

दस्तावेजों से यह ज्ञात होता है कि ख्वाजा के अजमेर में पहुँचने पर उनसे मिलने वालों की अपार भीड़ उन्हें घेरे रहती थी। जिस समय ख्वाजा भारत में आये थे, वह समय भारत में अंधविश्वासों, आडम्बरों, जादू-टोना और तरह-तरह के चमत्कार दिखाने का युग था। जोगी लोग भारतीय जनता को अपनी सिद्धियों का प्रदर्शन करके ईश्वर की महिमा स्वयं में ही बता रहे थे। बौद्ध धर्म के लोगों का आन्दोलन 12 वीं सदी तक आते-आते ठंडा पड़ गया था और शंकर की अद्वैत भक्ति की परम्परा भारत की चारों दिशाओं में स्थापित उनके मठों में सिमट कर रह गयी थी। सिद्ध और नाथ बौद्ध धर्म की बज्रयान शाखा की गोम्पा और गुफाओं की गुहा साधना की बेड़ियाँ तोड़कर सीधे समाज में विचरण पर उतर आये थे। ये सामाजिक समानता की बात करते थे, लेकिन अपने चमत्कार

से समाज को भयभीत भी रखते थे। समकालीन राजवंश और राजा से लेकर सम्राट तक इन चमत्कारों के सामने नत मस्तक थे।

भारत के सामाजिक संगठन में धर्म की और ईश्वर प्राप्ति की किसी मार्ग की कोई प्रतिष्ठा शेष नहीं रही थी। जिस शंकराचार्य ने पूरे भारतीय समाज को अपने दर्शन और आध्यात्म से प्रभावित किया था, वह उम्मीद भी शंकराचार्य के मठों में सिमटते ही समाप्त हो गयी। शंकराचार्य के ये मठ धन और वैभव के दिखावे में अपना मार्ग भटक गये।

भारतीय समाज को इस सामाजिक संक्रमण के दौर से निकालने के लिए ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती में उम्मीद दिखाई दी, क्योंकि ख्वाजा साहब ने भारत में चमत्कार दिखा रहे सबसे बड़े जादूगर को उससे बड़ा चमत्कार दिखाकर अपना मुरीद बना लिया था। इस तरह भारतीय समाज में तरह-तरह के भेद-भावों से बाहर निकालकर ख्वाजा ने सामाजिक समरसता का संदेश दिया और भारतीय जनता, ख्वाजा की सहजता, आत्मीयता और प्रेम की गुलाम हो गयी-

'क्या हिन्दू! क्या मुसलमान! क्या सिक्ख! क्या ईसाइ!,
ख्वाजा की वारगाह में होते थे सब भाई-भाई।'

यह सिलसिला ख्वाजा साहब के सामने ही परवान चढ़ता गया। भारत में ख्वाजा साहब के प्रति समाज के सभी वर्गों के लोगों मे जो अदब और सम्मान है, वह इस संसार में किसी अन्य संत फकीर को नहीं मिला।

आज भी ख्वाजा साहब का पवित्र मजार राजस्थान के अजमेर शहर में है, जहाँ विश्व भर से उनके 'अकीदतमंद' मुरीद सालाना उर्स में हाजिरी लगाते हैं। सदियों से चली आ रही ख्वाजा साहब के प्रेम की परम्परा आज 21 वीं सदी में भी मध्यकाल की तरह ब-दस्तूर जारी है। ख्वाजा भारत के 'सुल्तान-ए-हिन्द' कहे जाते हैं। वे हिन्दुस्तान की जनता के दिलों के भीतर के बादशाह है, जिन्हें लोग 'गरीब नवाज' के नाम से अपने दुःख-दर्द में याद करते हैं।

इस्लाम की जिस सूफी परम्परा को ख्वाजा ने भारत में प्रेम और सामाजिक भाई-चारे की मिशाल के रूप में कायम किया, उस सूफी परम्परा की विशेषता है कि वे खुद भूखे रहते हैं, कम खाते हैं लेकिन लंगर से उनके कोई भूखा नहीं लौटा! ख्वाजा साहब से समकालीन राजा पृथ्वीराज चौहान को ईर्श्या हुई थी, और उसने तरह-तरह से ख्वाजा साहब को परेशान किया, जिससे ख्वाजा साहब अजमेर छोड़ दे। यहाँ तक कि अजमेर की अनासागर झील से उन्हें पानी लेने पर भी पाबन्दी लगा दी गयी थी। पर, ख्वाजा डरे नहीं, डटे रहे और रियाया

से लगातार सम्पर्क में रहे और उसी का नतीजा है कि अजमेर वाले ख्वाजा गरीब नवाज का नाम पूरे विश्व में लोग बड़े अदब के साथ लेते हैं। अजमेर में ख्वाजा साहब का पाक मजार आज हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई आदि सभी धर्मों के लोगों का पवित्र तीर्थ स्थान है, जहाँ रोज हजारों लोग बड़ी शिद्दत के साथ ख्वाजा की निगाहें करम माँगत हैं।

हजरत मुहम्मद साहब के पारिवारिक सिलसिले में ही ख्वाजा गरीब नवाज को माना जाता है। वे हिन्दु-मुसलमान दोनों सम्प्रदाय के चहेते हैं, इसलिए उन्हें भारत में साम्प्रदायिक भाई-चारे की मिशाल माना जाता है। इनकी कही हुई बातें आज भी समाज को एकता की राह दिखाती हैं।

बाबा शेख फरीद (सन् 1173-1266 ई.)

शेख फरीद चिश्ती सम्प्रदाय के पंजाब के सूफी संत थे। जिनका पूरा नाम 'हजरत ख्वाजा फरीदुद्दीन शकरगंज' था। शेख फरीद जी का जन्म संवत् 1230 वि. (सन् 1173ई0) में मुल्तान जिले के दीपालपुर के निकट कोठीवाल में हुआ था तथा इनकी मृत्यु वर्तमान समय के पंजाब (अब पाकिस्तान) में स्थित फरीदकोट शहर में संवत् 1323 वि. (सन् 1266 ई0) में हुई थी। इस शहर का नाम बाबा शेख फरीद के नाम पर ही रखा गया था और इसी शहर में उनकी मजार भी है। इनकी रचनाएँ 'गुरू ग्रंथ साहिब' में संकलित हैं।

तत्कालीन भारतीय उपमहाद्वीप में राजनीतिक तथा सामाजिक आराजकता व्याप्त थी। चारों ओर लूट-पाट, अत्याचार और अशान्ति का बोल-बाला था। देशी और विदेशी आक्रमणों से भारतीय जनता भयभीत और त्रस्त हो चुकी थी। ऐसी स्थिति में जनता को सामाजिक उत्थान और जीवन की राह दिखाने वाले मार्गदर्शी की जरूरत थी। संत फरीद ने इस समय की सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति की। उन्होंने समाज को प्रेम और शान्ति का सूफीयाना पाठ पढ़ाया। शीघ्र ही बाबा फरीद ख्याति चहुँओर फैल गयी। इनकी रचनाओं में गुरू-शिष्य परम्परा का अत्यधिक सम्मान और आपसी प्रेम प्रकट होता हुआ दिखायी देता था। गुरू में ही परमात्मा की छवि देखना इनकी रचनाओं के कथ्य में समाहित था।

ईश्वर और गुरू से प्रेम के अलावा बाबा शेख फरीद की रचनाओं में सामाजिक समरसता भेद-भाव हीनता और जाति-सम्प्रदाय से अलग समूची मानवता के लिए इनकी रचनाओं ने नई सामाजिक जमीन बनायी, जो भारतीय उपमहाद्वीप

में जाति संम्प्रदायों में विभक्त समाज के लिए एक नया सामाजिक, आध्यात्मिक अनुभव था, जिसने सभी जाति, वर्ग, सम्प्रदाय के लोगों को बिना किसी भेद-भाव के अपनी ओर आकर्षित किया। बाबा फरीद के सूफी प्रेममार्ग की ओर मुसलमानों के साथ बड़ी मात्रा में हिन्दु समाज के लोग भी उनके मुरीद हो गये।

बाबा शेख फरीद के इसी सूफीयाना प्रेममार्ग की मानवीयता के कारण सिक्खों के पवित्र धर्म ग्रंथ 'गुरू ग्रंथ साहब' में उनकी रचनाओं को संग्रहित किया गया। जिनका आज सम्मान के साथ गुरूद्वारों में पाठ किया जाता है। बाबा शेख फरीद की वाणी आज भी भारत और पाकिस्तान में स्थित सभी गुरूद्वारों और जनसमाज में सम्मान के साथ सुनायी देती है।

बाबा शेख फरीद मध्यकाल में सूफीभक्ति धारा के ऐसे संत हैं जो अपने रचना कर्म के कारण आज 21वीं सदी के समाज में गहरे रूप से उपस्थित हैं और आज भी समाज को अपने सूफीप्रेममार्ग से इंसानियत की राह दिखाते हैं। बाबा शेख फरीद के बारे में लोगों का मानना है कि धार्मिक शास्त्रार्थ में उनके जैसा बुद्धिमान व्यक्ति इस संसार में कोई दूसरा नहीं हुआ। माना जाता है कि वे ज्ञान के सभी क्षेत्रों में पूर्णरूप से मर्मज्ञ थे।

बाबा फरीद के पिता का नाम शेख जमान सुलेमान तथा माता का नाम मरियम था। इनकी माता धर्मात्मा इस्लामी तालीम की ज्ञाता थी। वह शुद्ध हृदय वाली व ईमानदार थी। उसकी शिक्षा का प्रभाव फरीद जी के ऊपर बचपन में ही बहुत पड़ा। आप 12 साल से पहले ही कुरान मजीद अध्यन्न कर गए। यह भी कहा जाता है कि मौखिक रूप से पहले ही याद कर लिया तथा धार्मिक परिपक्व हो गए। इनके पिता मशहूर सूफी थे। शेख फरीद जी के पूर्वज सुल्तान महमूद गजनवी के साथ संबंध रखते थे। आप के पिता गजनवी के भतीजे थे। सुलेमान पहले हिंद आ गया, फिर वहाँ से लाहौर आ बैठे। सुलेमान का फकीरी दायरा कायम हों गया। लाहौर से उठ कर जंगली इलाके मुल्क की तरफ चले गए। अंत में पाकपटन में अपना स्थान कायम कर लिया। वहीं शेख फरीद जी का जन्म हुआ। शेख फरीद जी का जन्म गुरु नानक देव जी से पहले पाँच सौ साल पहले माना जाता है। एक दिन माता ने तपस्या के बारे में बताया तो आप ने विचार बना लिया कि युवा होकर तपस्या करेंगे। जब युवा हुए, चेतना आयी तो घर से तपस्या के लिए निकल पड़े। उन्होंने बारह साल जंगल में काटे। उनके बाल बढ़ गए व जुड़ गए। प्रभु का सुमरन करते हुए गर्मी-सर्दी में रहकर वन की पीलू, करीरो के डेले, थोहर का पक्का फल आदि खा लेते थे। उनके मन

में बारह साल भक्ति करके अहंकार आ गया। उन्होंने चिडियों को कहा "मर जाओ।" सचमुच ही चिड़िया मर गई। "जीवित हो जाओ" वह सचमुच ही जीवित हो गई। उन्हें लगा कि उनकी भक्ति पूरी हो गई है। रिद्धिया-सिद्धिया मिल गई हैं। अच्छा हो गया है। अहंकार में भरे हुए फरीद जी पास के गाँव में पहुंच गए। अपनी प्यास बुझाने के लिए कुएँ की तरफ चल दिए। वहाँ पर एक स्त्री पानी का डोल निकालती व भरकर उल्टा देती। फरीद जी ने कहा कन्या! मुझे पानी पिलाओ मैं दूर से आया हूँ। परन्तु उस कन्या ने फरीद जी की तरफ ध्यान न दिया और अपने कार्य में लगी रही। फरीद जी क्रोधित हो गए और कहने लगे- "मैं कब से कह रहा हूँ मुझे पानी पिलाओ! जमीन पर पानी फेकने से तुम्हें क्या लाभ?" कन्या ने उत्तर दिया मेरी बहन का घर जल रहा है, आग बुझा रही हूँ। मेरी बहन का घर यहाँ से बीस कोस दूर है। फरीद जी यह सुनकर बहुत हैरान हुए। कन्या ने कहना शुरू किया कि यहाँ चिड़िया नहीं जिनको कहोगे 'मर जाओ' तो वह मर जाएँगी तथा कहोगे 'उड़ जाओ' तो उड़ जाएँगी। यहाँ यह नहीं। यह बात सुनकर फरीद जी दंग रह गए कि उसे यह बात कहाँ से ज्ञात हुई। आप चाहे मुझे पानी न पिलाए परन्तु यह सारी शक्ति जानने तथा आग बुझाने की कहाँ से प्राप्त की ? कन्या ने उत्तर दिया 'सेवा तथा पति प्रेम करती हूँ। यही तपस्या है अहंकार नहीं।' भला आपने तो परीक्षा की, प्रभु की परीक्षा मन में संदेह उत्पन किया। ऐसा हरगिज नहीं करना चाहिए था। फरीद जी ने पानी पिया और क्या देखते हैं कि कुआँ खाली है, न डोल, न फिरनी, न वह स्त्री। अकेले फरीद जी वहाँ खड़े थे। वे हैरान हो गए और जान गए कि परमात्मा ने यह सारा खेल रचा है। घर पहुँचे तो माँ ने देखा कि पुत्र के बाल जुड़े हुए हैं। वह उसे सवारने लगी। फरीद जी को पीड़ा महसूस हुई। माँ कहने लगी पुत्र, जिन वृक्षों के पत्ते तोड़कर खाते थे तो उनको पीड़ा नहीं होती थी? इस तरह दूसरों को दुःख देने से पीड़ा अनुभव होती है। सबमें अल्लाह का नूर है, चाहे कोई पक्षी है या परिंदा। उन्हें ज्ञात हो गया कि उनकी भक्ति अभी अधूरी है। जोकि चिड़ियों की परीक्षा में गवां ली। इस तरह उनके मन में दूसरी बार तपस्या करने का ध्यान आया। बाबा फरीद ने फिर घर छोड़ दिया। धरती पर गिरी हुई चीज ही खाते, वृक्ष से पत्ता तक न तोड़ते। इस तरह कई साल बीत गए। उनका शरीर कमजोर हो गया। प्रभु दर्शन की लालसा थी। पर भगवान के दर्शन नहीं होते थे। उस समय की शारीरिक व मानसिक अवस्था को फरीद जी ने इस तरह बयान किया है-

"कागा करंग ढंढोलिआ सगला खाइआ मासु।
ऐ दुई नैना मति छुहउ पिर देखन की आस।।" -(बाबा फरीद)

भव-शरीर पिंजर मात्र ही रह गया है। इस तरह कई साल भक्ति करते बीत गए परमेश्वर नहीं आया। प्रभु के दर्शन एक-दो बार हुए। मन को संतुष्ठी हुई पर पूर्णता प्राप्त नहीं हुई। उन्हें यह ज्ञात हो गया कि बिना मुरशद धारण किए मन को संतोष प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए गुरु धरण करना जरुरी है। जिसके सम्बन्ध में उनका यह पद अधिक प्रसिद्ध रहा है-

"फरीदा जंगलु जंगलु किआ भवहि वणि कंडा मोड़ेहि।
वसी रबु हिआलीऐ जंगलु किआ ढूढेहि।।" -(बाबा शेख फरीद)

इसी प्रकार इनके और भी दोहे है। जैसे-

"फरीदा साहिब दी करि चाकरी दिल दी लाहि भरांदि।
दरवेसां नो लोड़ीऐ रुखां दी जीरांदि।।
फरीदा काले मैड़े कपड़े काला मैड़ा वेसु।
गुनही भरिआ मै फिरा लोकु कहै दरवेसु।।" -(बाबा शेख फरीद)

गुरु की खोज में फरीद जी अजमेर में चिश्ती साहिब के पास पहुँच गए। उन्हें मुरशद मानकर सेवा करने लगें। भक्ति के लिए सेवा व श्रद्धा दो गुण चाहिए थे। आप डटकर सेवा करते रहे। आपकी सेवा गुरु को स्नान कराने की थी। स्वयं ही अग्नि जलानी और पानी गर्म करना। एक दिन खूब बारिश हुई। उस काल में माचिस न होने के कारण अग्नि संभालकर रखनी पड़ती थी। फरीद जी को चिंता हो गई। उसी भयंकर तूफान में डेरे से बाहर निकल पड़े और उन्होंने देखा कि वेश्या की बैठक में अग्नि जल रही है। फरीद जी निडरता के साथ अन्दर चले गए। उन्हें देखकर वेश्या मन ही मन कुछ ओर ही सोचती रही लेकिन उसका सोचना फरीद जी के विपरीत था। उन्होंने कहा माता जी! अग्नि चाहिए। यदि अग्नि न मिली तो स्नान कैसे होगा और चिश्ती जी खुदा की बंदगी कैसे करेंगे?

यह सुनकर कुकर्मी वेश्या हँस पड़ी और कहने लगी कि मुझे भी किसी चीज की आवश्कता है।

फरीद जी- किस चीज की आवश्कता है?

वेश्या- आपकी! मुझे आपकी आँखे बहुत प्यारी लगी हैं। अगर आप मुझे अपनी आँख की पुतली देंगे तो अग्नि अवश्य ही मिल जायेगी। जैसे ही वेश्या

ने तेज चाकू लिया और आँख पर लगाया उसे अचानक धक्का लगा और पीछे गिर गई। लेकिन फरीद की आँख पर घाव हो गया। उसने आँख पर पट्टी बाँध दी और फरीद जी को अग्नि देकर फरीद जी से क्षमा माँगने लगी।

अपने नियम के अनुसार फरीद जी ने प्रातःकाल अग्नि जलाई, पानी गर्म किया और गुरु जी को स्नान कराया। गुरु जी ने पूछा फरीद आँख पर पट्टी क्यों बांध रखी है? फरीद जी हाथ जोड़ कर खड़े रहे। 'पट्टी खोल दो' गुरु जी ने हुक्म किया। जैसे की पट्टी खोली आँख पर कोई घाव नहीं था। आँख वैसे की वैसी थी। मुरशद ने वचन किया, तुम्हारी सेवा परवान हुई, तपस्या भी पूर्ण हुई। अहंकार मत करना। नम्रता अपनाना और खुदा को सदा याद रखना। रिद्धियां-सिद्धियां सदा आपके साथ रहेंगी। अपने घर जाकर खुदा की महिमा गाओ।

इस प्रकार 'हजरत चिश्ती साहिब' प्रसन्नता पूर्वक वर देते गए और बाबा फरीद जी उनके चरण पकड़कर श्रवण करते हुए कृतार्थ हो गये। बाबा फरीद जी अपने घर पाक पटन लौट आए और सूफी मत का प्रचार-प्रसार करने लगे। नेकी, सत्य और विनय का प्रकाश चारों तरफ जगमगा गया तथा आपकी गद्दी का यश दूर-दूर तक फैल गया। जो भी उस गद्दी पर विराजमान होता उसका नाम फरीद रखा जाता। अब भी यह गद्दी करामाती गद्दी मानी जाती है। साहित्यिक में श्री गुरुग्रंथ साहिब में आप की वाणी के श्लोक विद्यमान हैं जिन्हें 'सलोक फरीद जी' कहा जाता है। इनकी सारी ही वाणी कल्याणकारी तथा उपदेश प्रदान करने वाली है।

ख्वाजा हजरत निजामुद्दीन औलिया(सन् 1238-1325)

हजरत निजामुद्दीन औलिया चिश्ती भारत में ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की परम्परा के सबसे लोकप्रिय सूफी संतों में से रहे हैं। बाबा फरीदुद्दीन शकरगंज के शिष्य हजरत निजामुद्दीन औलिया, हजरत अमीर खुसरों के पीर (गुरू) थे, इन्हें बाबा फरीद ने अपनी संत परम्परा का मुकम्मल उत्तराधिकारी घोषित किया था। हजरत साहब का दिल्ली में रूतबा किसी बादशाह से बढ़कर था, फर्क इतना था कि बादशाह सेना की दम पर जनता पर हुकुमत करता है और ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया अपने सूफियाना तसव्वुफ के इश्क-हकीकी के बल पर अपने समकालीन दिल्ली के बादशाह से अधिक लोकप्रिय और सम्मानित थे। हजरत साहब के यहाँ जो लंगर चलता था उसमें हिन्दु-मुसलमान सभी के लिए

बड़े आदर से भोजन कराया जाता था। बादशाह ख्वाजा निजामुद्दीन के लंगर और उनसे मिलने वालों की बड़ी तातादं के कारण उनसे इर्श्या रखता था।

कहा जाता है कि एक बार दिल्ली के बादशाह ने ख्वाजा निजामुद्दीन के दरबार में जनता की भीड़, अपने दरबार से अधिक होने का समाचार मिला, इससे चिढ़कर उसने ख्वाजा निजामुद्दीन को दिल्ली सल्तनत छोड़नें का आदेश भिजवाया, जिस पर ख्वाजा ने जबाब दिया- 'ख्वाजा दिल्ली में ही रहेगें और मुझे आदेश देने वाले के लिए दिल्ली दूर है''

हजरत अमीर खुसरो की अपने गुरू (पीर) निजामुद्दीन औलिया के प्रति श्रद्धा विश्व-विख्यात है। इस संसार में किसी भी भक्ति परम्परा में खुसरों के जैसा शिष्य नहीं हुआ कि जिसने अपने गुरू के इंतकाल पर स्वतः प्राण त्याग दिये और हजरत निजामुद्दीन औलिया के इंतकाल के समय पर एक दोहा कहा-

''खुसरो रैन सुहाग की, जागी पी के संग।
तन मेरो मन पीउ को, दोउ भए एक रंग।
गोरी सोवै सेज पर, मुख पर डारै केश।
चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहुँ देश।'' -(अमीर खुसरो)

हजरत निजामुद्दीन औलिया चिश्ती परम्परा के चौथे सूफी संत माने जाते हैं। इस सूफी संत ने वैराग्य और सहनशीलता की मिसाल पेश की, कहा जाता है कि 1303 में इनके कहने पर मुगल सेना ने हमला रोक दिया था, इस प्रकार ये सभी धर्मों के लोगों में लोकप्रिय हो गये थे। हजरत साहब ने 92 वर्ष की आयु में सन् 1325 ई. में मृत्यु हो गयी थी तथा उसी वर्ष उनकी मजार की गुम्बद का निर्माण आरंभ हो गया। आज यह स्थान निजामुद्दीन औलिया रेलवे स्टेशन के करीब है।

अमीर खुसरो (सन्1255-1325 ई.)

अमीर खुसरो, मध्यकालीन भारत के सबसे बहुमुखी प्रतिभा धनी सूफी संत थे। ये चिश्ती सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे। इनका जन्म सन् 1255 ई. में उत्तर प्रदेश के एटा जिले के पटियाली गाँव में हुआ था। उनके पैतृक पूर्वजों आमू-पार, जो सिंधु नदी को पार करके तेरहवीं शताब्दी में भारत आये। इनके पिता का नाम सैफुद्दीन महमूद था। खुसरो की माँ बलबन के युद्धमंत्री इमादुतुल मुलक की बेटी थी, जो एक भारतीय मुसलमान महिला थी। इनके आध्यात्मिक गुरू सूफी संत हजरत निजामुद्दीन औलिया थे। इन्हें हिन्दुस्तान की तूती कहा जाता है।

बचपन में ही उनके पिता की मृत्यु हो जाने के कारण खुसरो की देख-भाल उनके नाना-नानी ने की थी। इनका असली नाम 'अबुल हसन' था। भारतीय साहित्य और संगीत के क्षेत्र में अमीर खुसरो का अपार योगदान माना जाता है। इनके पिता तुर्की और माँ भारतीय मूल की थी। इनके दादा सम्राट ग्यासुद्दीन बलबन के शाही महल में एक प्रतिष्ठित सैनिकों के सिपह-सलाहकार एवं गुरू थे। ये अपने नाना के साथ राजदरबार की सभाओं में भी जाते थे। इनकी रूचि बचपन से ही कविता, संगीत, घुड़सवारी तथा ललित कलाओं में थी।

अमीर खुसरो खड़ी बोली के जनक कहे जाते हैं। इनकी भाषाओं में अरबी, फारसी का एक सुन्दर संयोजन है। इन्होंने अपनी गजल में हिन्दुस्तानी शास्त्रीय शैली का इस्तेमाल किया है। ये सितार और तबला के आविष्कारक भी माने जाते हैं। इनकी मृत्यु सन् 1325 ई. में हुई थी।

इनकी प्रमुख रचनाएँ खालिकबारी, पहेलियाँ, मुकुरियाँ, दो सुखने, गजल, हालात-ए-कन्हैया, नजरान-ए-हिन्दी आदि अनेक ग्रंथ हैं।

अमीर खुसरों की विविध रचनाओं का परिदृश्य निम्न है—

गीत

"मोरा जोबना नवेलरा भयो है गुलाल।
कैसे घर दीन्हीं बकस मोरी माल।
निजामुद्दीन औलिया को कोई समझाए, ज्यों-ज्यों मनाऊँ
वो तो रुसो ही जाए।
चूडियाँ फूड़ों पलंग पे डारुँ इस चोली को मैं दूँगी आग लगाए।
सूनी सेज डरावन लागै। बिरहा अगिन मोहे डस डस जाए।"

—(अमीर खुसरो)

गजल

"जिहाल-ए मिस्कीं मकुन तगाफुल,
दुराये नैना बनाये बतियां।
कि ताब-ए-हिजरां नदारम ए जान,
न लेहो काहे लगाये छतियां।।
शबां-ए-हिजरां दरज चूं जुल्फ
वा रोज-ए-वस्लत चो उम्र कोताह,

सखि पिया को जो मैं न देखूं
तो कैसे काटूं अंधेरी रतियां।।" *-(अमीर खुसरो)*

पहेलिया

1. *तरवर से इक तिरिया उतरी उसने बहुत रिझाया*
   बाप का उससे नाम जो पूछा आधा नाम बताया
   आधा नाम पिता पर प्यारा बूझ पहेली मोरी
   अमीर खुसरो यूँ कहेम अपना नाम नबोली -(निम्बोली)
2. *घूस घुमेला लहँगा पहिने, एक पाँव से रहे खडी।*
   आठ हाथ हैं उस नारी के, सूरत उसकी लगे परी।
   सब कोई उसकी चाह करे, मुसलमान, हिंदू छतरी।
   खुसरो ने यही कही पहेली, दिल में अपने सोच जरी। -(छतरी)
3. *एक थाल मोती से भरा। सबके सिर पर औंधा धरा।*
   चारों ओर वह थाली फिरे। मोती उससे एक न गिरेम -(आकाश)
4. *एक नार ने अचरज किया। साँप मार पिंजरे में दिया।*
   ज्यों-ज्यों साँप ताल को खाए। सूखै ताल साँप मरि जाएम
   -(दीया और बाती)

सूफी दोहा

"साजन ये मत जानियो तोहे बिछड़त मोहे को चौन।
दिया जलत है रात में और जिया जलत बिन रैन।।
रैन बिना जग दुखी और दुखी चन्द्र बिन रैन।
तुम बिन साजन मैं दुखी और दुखी दरस बिन नैंन।।"
-(अमीर खुसरो)

पद

"छाप तिलक सब छीनी रे मोसे नैना मिलाइके
प्रेम बटी का मदवा पिलाइके
मतवाली कर लीन्ही रे मोसे नैना मिलाइके

गोरी गोरी बईयाँ, हरी हरी चूड़ियाँ
बईयाँ पकड़ धर लीन्ही रे मोसे नैना मिलाइके
बल बल जाऊं मैं तोरे रंग रजवा
अपनी सी कर लीन्ही रे मोसे नैना मिलाइके
खुसरो निजाम के बल बल जाए
मोहे सुहागन कीन्ही रे मोसे नैना मिलाइके
छाप तिलक सब छीनी रे मोसे नैना मिलाइके" (अमीर ख़ुसरो)

इस प्रकार अमीर खुसरों अपनी रचनाओं के कारण भारतीय हिन्दी साहित्य के इतिहास में ही नहीं बल्कि, संगीत के इतिहास में भी अमर हो गये है। जिनकी प्रसिद्धी को भुलाया नहीं जा सकता है।

हिन्दी सूफी परम्परा के कवि तथा उनका साहित्य

हिन्दी सूफी कवियों की साहित्य परम्परा प्रारम्भ के सम्बन्ध में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत रहे हैं। अधिकतर विद्वानों का मानना है कि सूफी काव्य परम्परा का प्रादुर्भाव मुल्ला दाउद की रचना 'चंदायन' से माना जाता है। जिसे लोरकथा भी कहा गया है। लेकिन डॉ गणपति चंद्र गुप्त ने हिन्दी सूफी काव्य की परम्परा का जन्म असाईत कृत 'हंसावली' (1370 ई.) से माना है, क्योंकि रचना काल की दृष्टि से यह कृति चंदायन (1379 ई.) से पूर्व की है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार हिन्दी सूफी काव्य की परम्परा का आरम्भ कुतुबन कृत 'मृगावती' (1503 ई.) से मानते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदीने प्रथम सूफी काव्य के रूप में ईश्वरदास कृत सत्यवती कथा (1501 ई.) को मानते हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा ने मुल्ला दाउद कृत 'चन्दायन' (1379 ई.) को तथा डॉ. नगेन्द्र ने असाइत कृत 'हंसावली' को सूफी काव्य परम्परा की प्रथम कृति मानते है।

कुछ विद्वानों ने प्रथम सूफी काव्य के रूप में 'उषा-अनिरूद्ध' की कथा को मानते हैं। क्योंकि जायसी से पहले मुग्धावती, मृगावती, मधुमालती एवं प्रेमावती की रचना का उल्लेख मिलता है, जिनमें से 'मृगावती' और 'मधुमालती' ही उपलब्ध हो सकी है।

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि प्रेममार्गी परम्परा का प्रारम्भ 'उषा-अनिरूद्ध' की कथा से चली आती है, इसके सम्बन्ध में सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी की कृति 'पद्मावत' में चार प्रमुख कथाओं का वर्णन है वह इस प्रकार है-

"विक्रम धँसा प्रेम के बारा। सपनावति कहँ गयउ पतारा।।
मधूपाछ मुगधावति लागी। गगनपूर होइगा वैरागी।।
राजकुँवर कंचनपुर गयऊ। मिरगावति कहँ जोगी भयऊ।।
साधे कुँवर खण्डावत जोगू। मधुमालती कर कीन्ह वियोगू।।
प्रेमावति कहँ सुरवर साधा। ऊषा लागि अनिरूध बर बाँधा।।"

उपर्युक्त चौपाइयों में जायसी से पहले के चार काव्य-ग्रंथों का उल्लेख है। जिनमें क्रमशः मुग्धावती, मृगावती, मधुमालती और प्रेमावती है। इनमें से मधुमालती और मृगावती का पता चला है तथा अन्य दो ग्रंथ अभी उपलब्ध नहीं है। मृगावती की मूल प्रति के सम्बन्ध में यह जानकारी है कि यह उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जिले में आज भी संरक्षित है।

इस श्रेणी का सर्वप्रथम काव्य अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल के मुल्ला दाऊद नामक किसी सूफी संत 'चंदायन', 'चन्द्रावत' या 'चन्द्रावती' नाम का माना जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर विद्वानों ने सबसे अधिक प्रामाणिकता मुल्ला दाउद कृत 'चन्दायन' को उचित माना है। अन्य सूफी कवियों एवं रचनाओं के सम्बन्ध में विद्वानों का मत इस प्रकार है, जिसमें दामोदर कृत 'लखनसेन पद्मावती कथा (1459 ई.), कुशललाभ कृत 'ढोला मारू रा दूहा' (1473 ई.), गणपति कृत 'माधवानल कामकन्दला' (1527 ई.), मलिक मुहम्मद जायसी 'पद्मावत' (1540 ई.), मंझन कृत 'मधुमालती' (1545 ई.), कुशललाभ कृत 'माधवानल कामकन्दला चौपाई' (1556 ई.), नंददास कृत 'रूपमंजरी' (1568 ई.), आलम कृत 'माधवानल कामकंदला' (1584 ई.), नारायणदास कृत 'छिताईवार्ता' (1590 ई.), उस्मान कृत 'चित्रावली' (1613 ई.), पुहकर 'रसरतन' (1618 ई.), शेखनवी कृत 'ज्ञानद्वीप' (1619 ई.), कासिमशाह कृत 'हंसजवाहर' (1731 ई.), नूरमुहम्मद कृत 'इन्द्रावती' (1744 ई.) एवं 'अनुराग बाँसुरी' (1764 ई.), जानकवि कृत 'कथा रूपमंजरी', शेखनिसार कृत 'यूसुफ जुलेखा तथा दुःखहरन दास कृत 'पुष्पावती' आदि सूफी प्रेमाख्यानक काव्य लिखे गयेहैं।

उपर्युक्त मुसलमान सूफी कवियों के अतिरिक्त हिन्दू कवियों ने भी प्रेमगाथाएँ लिखी हैं, जिनमें ईश्वरदास कृत 'सत्यवती कथा' तथा दुःखहरन दास कृत 'पुष्पावती' है। इस प्रकार सूफी कवियों एव उनकी रचनाओं का परिचयात्मक विवरण निम्न रूपों में किया गया है-

(क) सूफी कवि असाइत

रचनाकाल की दृष्टि से कुछ विद्वानों द्वारा असाईत सूफी काव्य परम्रा के प्रथम कवि माने जाते है। डॉ. गणपति चंद्र गुप्त ने हिन्दी सूफी काव्य की परम्परा का जन्म असाईत कृत 'हंसावली' (1370 ई.) से माना है, क्योंकि रचना काल की दृष्टि से यह कृति चंदायन (1379 ई.) से पूर्व की है।

हंसावली-प्रेमाख्यानक काव्य परम्परा में 'हंसावली' का रचनाकाल हिन्दी सूफी काव्य परम्परा में सबसे प्राचीन ठहरता है। सूफी कवि 'असाइत' द्वारा 1370 ई. में 'हंसावली के रचना के प्रमाण मिलते है। इस दृष्टि से यह असाइत, हिन्दी सूफी काव्य परम्परा के प्रथम रचनाकार माने जा सकते हैं। असाइत कृत हंसावली के पूर्व हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य परम्परा की कोई रचना नहीं मिलती।

हिन्दी साहित्य का इतिहास, संपादक डॉ. नगेन्द्र ने अपने ग्रंथ में हंसावली को सूफी काव्य परम्परा में प्रथम कृति मानने का प्रामाणिक आग्रह किया है। हिन्दी साहित्य ग्रंथों में हिन्दी सूफी काव्य परम्परा के प्रवर्तन को लेकर स्थिति स्पष्ट नहीं है, लेकिन काल, भाषा और रचना संदर्भ आदि के आधार पर असाइत की हंसावली सूफी काव्य परम्परा की मुझे प्रारम्भिक कृति मानने में कोई परहेज नही है।

हंसावली की कहानी में अनेक कथाएँ एक दूसरे को परिभाषित करती हैं। इसमें प्रमुख कथा पाटण की राजकुमारी हंसावली जिसने मास-पखवाड़े में पाँच पुरूषों की हत्या का व्रत ले रखा था। अद्वितीय सुन्दरी राजकुमारी हंसावली के सौन्दर्य पर राजकुमार मुग्ध हो गया था, और योगी वेश धारण करके राजकुमारी को पाने निकल पड़ता है। जिसके कथ्य का वर्णन इस प्रकार किया गया है। जैसे-

"देवि अव्रधारू मुझ विनती। पेलि भवि हूं पंखिणी हती।
इड़ा मेहला सेवन कीउ। दव बलतउ तेणि बनि आविउ।
मुझ भरतार साहस नवि कीउ। अपति मेहलीनि उड़ि भयु।
इस्यं करम ते निष्ठुर तणां। मूकी ग्यु बालक आपणां।"

-(हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र)

(ख) मुल्लादाउद

हिन्दी सूफी कवियों में 'मुल्ला दाऊद' का नाम बड़े ही शिद्दत के साथ लिया जाता है। इनका पूरा नाम 'मौलाना दाऊद दलमई' था। परमेश्वरी लाल गुप्त द्वारा संपादित ग्रंथ 'चंदायन' में स्पष्ट किया गया है कि मौलान दाऊद का

परिचय सर्वप्रथम सन् 1928 ई. (वि.संवत् 1970) में मिश्रबन्धुओं ने अपने ग्रंथ 'मिश्रबन्धु विनोद' में इनका परिचय दिया गया है। उन्होंने अपने ग्रंथ के आदि प्रकरण में बताया है कि मुल्ला दाऊद अमीर खुसरो के समकालीन थे। उनका कविता काल संवत् 1385 के लगभग था। इन्होंने नूरक और चन्दा की प्रेमकथा हिन्दी में रची। परमेश्वरी लाल गुप्त द्वारा संपादित पुस्तक 'चन्दायन' की भूमिका में उल्लेख किये हैं कि मुल्ला दाऊद फिरोजशाह तुगलक के समकालीन थे। यह तथ्य मुनतखव के माध्यम से ब्रजरत्नदास द्वारा प्रकाशन में लाये जाने के पूर्व भी कुछ लोगों को ज्ञात था। उत्तर प्रदेश के प्रादेशिक गजेटियरों के प्रेणताओं ने इस बात का अस्पष्ट उल्लेख किया है, किन्तु हमारे अनुसंधानकर्ताओं का ध्यान उस ओर नहीं गया। रायबरेली जिले के गजेटियर में डलमऊ नगर के इतिहास के प्रसंग में कहा गया है कि अल्तमश के शासन काल में इस नगर (इलमऊ) ने समृद्धि प्राप्त की। उसके समय में यहाँ मखदूम बदरूद्दीन रहा करते थे। तत्पश्चात फिरोजशाह तुगलक के समय तक उन्नति पर था। उसने जनता में मुस्लिम सिद्धातों के प्रसार के लिए यहाँ एक नियमित विद्यालय स्थापित किया था। इस विद्यालय की उपयोगिता का अनुमान डलमऊ निवासी मुल्ला दाऊद द्वारा सम्पादित 'चन्द्रैनी' नामक भाषा पुस्तक देखकर किया जा सकता है। अवध के प्रादेशिक गजेटियर में भी यही बात इन शब्दों में कही गयी है कि फिरोजशाह तुगलक ने यहाँ (डलमऊ) मुस्लिम धर्म और विद्या के अध्ययन के लिए एक विद्यालय की स्थापना की। इसकी उपयोगिता इस बात से प्रकट है कि डलमऊ के मुल्ला दाऊद नामक कवि ने 779 हिजरी में 'चन्द्रैनी' नामक ग्रंथ का संपादन किया।

चन्दायन-इस ग्रन्थ की रचना सूफी कवि मुल्ला दाऊद ने 1379 ई. में की थी। परशुराम चतुर्वेदी ने सूफी प्रेमकाव्यों के अवतरणों का संग्रह 'सूफी काव्य संग्रह' के नाम से प्रस्तुत किया। इसमें दाऊद के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है कि इस रचना का सर्वप्रथम उल्लेख हिजरी सन् 772 (संवत्) 1427 में अर्थात फिरोजशाह तुगलक के शासनकाल (संवत् 1408-1445 वि.) में हुआ है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने 'चन्दायन' को 'लोरकथा' नाम दिया है। विषय-वस्तु की दृष्टि से इसमें भारतीय प्रेमाख्यानों की विभिन्न प्रवृत्तियां उपलब्ध होती है। इसके नायक का नाम 'लोर' अथवा 'लोरिक' है तथा नायिका का नाम चन्दा है। इसमें दोनों के प्रेम का चित्रण प्रबन्धकाव्य के रूप में किया गया है। नायक का नायिका प्रति प्रथम दृष्टि में ही प्रेम का उत्पन्न हो जाना तथा विभिन्न व्यक्तियों द्वारा उनके प्रेम में बाधा उत्पन्न करना, नाग द्वारा नायिका को डस लेना और

गारुड़ी द्वारा उसे ठीक करना इस कथा में दिखाया गया है। चन्दायन महाकाव्य की भाषा अवधी है। इसकी रचना प्राकृत-अपभ्रंश में प्रचलित कड़वक शैली में की गई है, जिसमें पांच अर्द्धालियों के बाद एक दोहा होता है। छन्द विधान एवं प्रबंध व्यवस्था की दृष्टि से यह पूर्णतः भारतीय परम्परा का पालन करने वाला प्रेमाख्यानक काव्य है। सूफी साधना का रूपक न होने पर भी चन्दायन ने सूफी साधकों अपनी ओर आकृष्ट किया था। दिल्ली के शेख बदरूद्दीन वायज रब्बानी अपने धार्मिक प्रवचनों में इस काव्य का पाठ किया करते थे। उनका मत था कि इसमें प्रेम और भक्ति की जिज्ञासा की पूर्ति है और धार्मिक तत्व निहित है। लगता है प्रेम और विरह की तीव्रता से प्रभावित होकर परवर्ती सूफीयों ने खींचतानकर इस काव्य में अपनी भावनाओं को किसी प्रकार आरोपित कर लिया था। सामान्य जनता में भी यह काव्य काफी लोकप्रिय था।

इस ग्रंथ के काव्य वैशिष्ट के अनेक परिदृश्य हैं। चंदायन में नायिका के सौन्दर्य का वर्णन कुछ इस प्रकार है :

केश वर्णन- "भँवर बरन सों देखी बारा। जनु बिसहर लर परे भँडारा।।
लाँव केस मुर (बाँध) धराये। जानु सेंदुरी नाग सुहाये।।"
-(चंदायन)

भौंह वणर्न- "भौंह धनुक जनु दुई कर ताने। पंचबान गुन खींच सयाने।।
बान बिसार सान दई लावइ। पारध जैस अहेरै आवइ।।
अरजुन धनुक सरग मैं देखी। चाँद भौंह गुन सोइ विसेखी।।
सर तीखे जिंह मार फिरवाइ। ठौर परे सो बेगि न जावइ।।
चाँद भौंह गुन ऐसे अहा। मूँड न डोल जु गाइ कहा।।"
-(चंदायन)

नेत्र वर्णन- "नैन सरूप सेत महँ कारे। खिन खिन बरन होंहि रतनारे।।
अम्ब फार जनु मोतिह भरे। ते लइ भौंह कै तर घरे।।"
-(चंदायन)

(ग) कुतुबन

कुतुबन सूफी सम्प्रदाय के दूसरे कवि माने जाते हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हें चिश्ती सम्प्रदाय के शेख बुरहान का शिष्य बताया है और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'बुढ़न' बताया है। अधिकतर विद्वानों का मत था कि कुतुबन के पीर का नाम शेख बढ़न था जैसा कि दिल्ली

प्रति में स्पष्ट है। डॉ. परमेश्वरी लाल गुप्त द्वारा संपादित पुस्तक 'मिरगावती' में उल्लेख है कि शेख बढ़न नाम के कई संत हुए है। एक शेख बढ़न मनेरी थे, जिनकी कुछ रचनाएँ 'मनेर शरीफ' में सुरक्षित है बयाज में प्राप्त हैं। इनके सम्प्रदाय के बारे में स्पष्ट रूप से कोई प्रामाणिक साक्ष्य नहीं है, किन्तु इनके बेटे कुतुबमुवडित बल्खी के सम्बन्धमें निश्चित हैं कि वे फिरदौसी सम्प्रदाय के थे। इस कारण इन्हें भी कुतुबन का पीर अनुमान नहीं किया जा सकता है।

एक दूसरे संत 'मखदूम शेख बढ़न' हैं। ये सुविख्यात सूफी संत 'ईसा ताज जौनपुरी' के शिष्य और उत्तराधिकारी थे। वे कस्बा अजौली के रहने वाले थे और वहीं उनकी समाधि भी है। सूफी कवि कुतबन के बारे में मानना है कि ये सोलहवीं सदी (संवत् 1550 वि.) के लगभग शेरशाह सूरी के पिता हुसैनशाह के दरबार में रहते थे। इनकी पुस्तक 'मृगावती' का जिक्र महान सूफी कवि जायसी ने अपनी पुस्तक 'पद्मावत' में किया है।

'मृगावती' को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सूफी प्रेमाख्यानक काव्य परम्परा का पहला ग्रन्थ मानते हैं, किन्तु डॉ. नगेन्द्र ने 'हंसावली' को सूफी प्रेमाख्यानक काव्य परम्परा का पहला ग्रन्थ स्वीकार किया है। यह ग्रन्थ अवधी भाषा में लिखा गया है। इसमें कड़वक शैली (दोहा-चौपाई शैली) का ही प्रयोग किया गया है।

मृगावती-कुतुबन कृत मृगावती का रचनाकाल चौखम्भा प्रति से ज्ञात तथ्यों के अनुसार 909 हिजरी (सन् 1503-04 ई.) की रचना मानी जाती है। कुछ विद्वानों ने इसे संवत् 1558 वि. (1501 ई.) बताया गया है। इस ग्रंथ की प्रेम-कथा चौपाई और दोहे के द्वारा रची गयी है तथा इस रचना में कड़वक शैली का प्रयोग किया गया है। उदाहरण स्वरूप-

''जहिया पन्द्रह सै हुत साठी।
तहिया इँह चौपाइँह गाँठी।।
बहुल पाख भादों जँह अही।
सिंघ रासि संघ तँह निरबही।।'' -(मिरगावती, दूसरा कड़वक,)

मृगावती कथा का सारांश इस प्रकार है- चन्द्रनगर के राजा गणपति देव के राजकुमार और कंचनपुर के राजा रूपमणि की कन्या मृगाावती की प्रेमकथा का वर्णन है। चन्द्रगिरी का राजकुमार कंचननगर की राजकुमारी मृगावती पर मोहित हो जाता है। अनेक कष्टों के बाद वह राजकुमारी मृगावती तक पहुँच पाता है। कालान्तर एक दिन मृगावती, राजकुमार को धोखा देकर उड़कर चली गयी। राजकुमार योगी बनकर उसे ढूँढ़ने निकल पड़ता है। मार्ग में रूक्मिणी नाम

की एक सुन्दरी थी, जो राक्षसों से आक्रमण से घिरी हुई थी, राजकुमार ने उन राक्षसों को मारकर कन्या की जान बचालेता है। इस प्रकार रूक्मिणी के पिता ने इनका विवाह राजकुमार के साथ कर दिया। धीरे-धीरे राजकुमार खोजते-खोजते मृगावती के राज्य में पहुँच जाता है, जहाँ पर मृगावती अपने पिता की मृत्यु के बाद स्वयं रानी बनी बैठी थी। राजकुमार 12 वर्ष वहाँ रहने के पश्चात मृगावती को साथ लेकर अपने राज्य लौट आता है। लौटते समय, रास्त में वह रूक्मिणी को भी संग में ले लेता है।

इस प्रकार बहुत समय तक राज्य करने के पश्चात जंगल में आखेट खेलते समय हाथी से गिर जाने की वजह से राजकुमार की मृत्यु हो जाती है और उसकी दोनों रानियाँ 'मृगावती' और 'रूक्मिणी' उसके साथ सती हो जाती हैं।

इस कथा के बीच-बीच में प्रेम-मार्ग की कठिनाईयों को बड़े अच्छे ढंग से वर्णन किया गया है। जो साधक के लिए बहुत ही उपदेश परक है। इस प्रबन्धकाव्य में कहीं-कहीं बहुत ही रहस्यमयी ढंग से कथा का विश्लेषण किया गया है। जिसका एक नमूना आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास में मिलता है। जैसे-

''रूकमिनि पुनि बैसहि परि गई कुलवंति सत सों सति भई।।
बाहर वह भीतर वह होई। घर बाहर को रहै न जोई।।
बिधि कर चरित न जानै आनू। जो सिरजा सो जाहि निआनू।।''

-(हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल)

दूसरे उदाहरण में काव्य सौन्दर्य को इस प्रकार दर्शाया गया है-

''अति रसाल रसना मुख ताही। बोलत बोल लाग चित जाही।।
बोल सुहाई सो कोकिल बानी। काकल माँझ लख सों आनी।।
कुरला रितु बोलै भिनुसारी। प्रेम खटारस कहै सँभारी।।
अमिय वचन वासुकि सन पाई। सीतल चन्दन साल सुहाई।।''

-(मिरगावती, 65)

(घ) मंझन

सूफी कवि मंझन के विषय में अभी प्रामाणिक रूप से कुछ ज्ञात नहीं हो सका है। केवल 'मधुमालती' नामक काव्य की एक खण्डित प्रति उपलब्ध हुई है। जिसकी प्रामाणिकता के विषय में पाया जाता है कि यह सूफी कवि 'मंझन' द्वारा रचित मानी जाती है।

इसकी रचना काल के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने लिखा है कि 'इसकी रचना संवत् 1550 और 1595 वि के बीच में, मृगावती के कुछ पीछे हुई।'

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसकी रचना सन् 1545 ई. मानी है। उन्होंने लिखा है कि "पं. रामचन्द्र शुक्ल ने मंझन को जायसी का पूर्ववर्ती कवि माना है, लेकिन मंझन कवि ने 'शाहेवक्त' के वर्णन के प्रसंग में जिस सलेमशाह का वर्णन किया है, यदि वह शेरशाह का पुत्र हो तो यह रचना बाद की होगी, क्योंकि शेरशाह सन् 1545 ई0 में मरा और उसके बाद ही वह गद्दी पर बैठा।" इसी क्रम में डॉ. परशुराम चतुर्वेदी ने मंझन को जायसी के बाद का होना माना है। 'मधुमालती' में भी 'मृगावती' की तरह पांच चौपाइयों के बाद एक दोहे का क्रम रखा गया है। इस रचना का काव्य संसार मृगावती की अपेक्षा विशद, बृहृत और हृदयग्राही है। सूफी मंझन कवि की रचना का ठीक संवत् नहीं ज्ञान हो सका है। पर, इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इनकी रचना विक्रम संवत् 1550 और 1565 के बीच मानी जाती है। इस प्रबन्धकाव्य की रचना शैली की सबसे प्रसिद्ध और लोकप्रिय ग्रंथ 'पद्मावत' मे जायसी ने अपने पूर्व के बने हुए इस प्रकार के काव्यों का संक्षेप में उल्लेख किया गया है-

"विक्रम धँसा प्रेम के बारा। सपनावति कहँ गयउ पतारा।
मधूपाछ मुब धावति लागी। गगन पुर होइगा बैरागी।।
राजकुँवर कंचनपुर गयऊ। मिरगावती कहै जोगी भयऊ।।
साधे कुँवर खँडवत जोगू। मधुमालती कर कीन्ह वियोगू
प्रेमावति कह सुरवर साधा। उषा लागि अनिरूध बर बाँधा।"
-(हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल)

इसी प्रकार उसमान कृत 'चित्रावली' में मधुमालती का जो उल्लेख है। उसमें भी कुँवर का नाम मनोहर ही है। जिसकी पुष्टि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस प्रकार की है-

'मधुमालति होइ रूप देखावा। प्रेम मनोहर होइ तहँ आवा।।'

इस प्रकार मंझन ने जो कुछ आत्मोल्लेख 'मधुमालती' में किये हैं, उन्हीं से हम उनके विषय मे जानते हैं। उनके बारे में हमें जीवन वृत्त सम्बन्धी के लिए अन्य सूत्र मालूम नहीं होते हैं।

मधुमालती- कवि ने रचना का आरम्भ सलीमशाह के राज्य काल में किया था। यह सलीम शेरशाह सूरी का पुत्र था और 952 हिजरी (1545 ई.) में

शेरशाह के देहान्त के अनन्तर शासक हुआ था। सूफी कवि मंझन ने इस कृति में आध्यात्मिक प्रेमभाव की व्यंजना के लिए प्रकृति से भी अधिक अभिव्यक्त करने की कोशिश कर रूचिकर और मार्मिक बनायी गयी है।

मधुमालती महाकाव्य के नायक का मनोहर एवं नायिका मधुमालती है। इसका कथा प्रसंग इस प्रकार है कि- कनेसर राज्य में एक राजा राज्य करता था जिसका नाम सूरजभान था। सूरजभान के पुत्र राजकुमार मनोहर का, महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती के साथ प्रेम तथा पारस्परिक वियोग की कथा वर्णित की गयी है। पहले राजकुमार अप्सराओं द्वारा मधुमालती के चित्रसारी में पहुँचता है। वे दोनों एक दूसरे को देखकर परस्पर मोहित हो जाते हैं। इस प्रकार एक बार मिलन के बाद उन दोनों में विरह-वेला आती है। इस प्रकार कथा के अन्त में राजकुमार मनोहर और राजकुमारी मधुमालती में पुनः मिलन हो जाता है इसी कथा में प्रेमा और ताराचन्द का त्याग अत्यन्त सराहनीय रहा। इस कथा में विरह व्यंजना को अधिक महत्व दिया गया। इसमें एक उक्ति संस्कृत के एक श्लोक के सुन्दर अनुवाद का उदाहरण है-

'शैले-शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे-गजे।
साधवो नहिं सर्वत्र, चन्दनं न बने-बने।।'

उपर्युक्त श्लोक का अनुवाद इस प्रकार है-

'रतन की सागर सागरहिं, गज मोती गज कोइ।
चन्दन की वन वन ऊपजै, विरह कि तन तन होइ।।'

इस ग्रंथ में विरह के साथ-साथ आध्यात्मिक तथ्यों का भी निरूपण हुआ।

मंझन कृत मधुमालती का जिक्र मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने महाकाव्य 'पद्मावत' में किया है-

"साधा कुँवर मनोहर जोगु। मधुमालति कहँ कीन्ह वियोगू।।"
-(पद्मावती)

बनारसीदास जैन ने अपनी आत्मकथा 'अर्द्धकथानक' में संवत् 1660 की घटनाओं का उल्लेख करते हुए लिखा है-

"तब घर में बैठे रहैं जाहिं न हाट बजार।
मधुमालती मिरगावति, पोथी दोइ उदार।।
ते बांचहि रजनी समै, आवहिं नर दस बीस।
गावैं अरू बातैं करहिं, नित उठ देहिं असीस।।" -(मधुमालती)

कविवर उस्मान ने चित्रावली में भी मधुमालती का उल्लेख कुछ इस प्रकार किया है-

"शुगावती मुख रूप बसेरा, राजकुँवर भयो प्रेम अहेरा।
सिंघल पद्मावति भो रूपा, प्रेम कियो है चितउर भूपा।।
मधुमालती होइ रूप दिखवा, प्रेम मनोहर होइ तहँ आवा।"
-(मधुमालती)

इस ग्रंथ में कवि का मूल उद्देश्य उदात्त प्रेम का चित्रण करना ही है। इस ग्रन्थ की भाषा अवधी है तथा इसमें दोहा-चौपाई शैली का प्रयोग हुआ है। इसके कुछ परिदृश्य इस प्रकार हैं-

"पाट पटंबर दीन्ह दुआरी, पेमा भौ पहरू चित्रसारी।
साठि सहेली पेमा केरी, एक एक संग जो पंच पंच चेरी।
सब सरूप जे जोवन बारी, एक बैस जो एक उन्हारी।
खेलैं हँसै रहैं एक ठांई, पेमा बहुरि देखैं सब आई।
आस पास चहुँ दिस चित्रसारी, केलि करत है राज दुलारी।"
-(कुँवर-मधुमालती खण्ड)

(ङ) मलिक मुहम्मद जायसी

प्रेममार्गी सूफी कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी का प्रमुख स्थान है। इनका जन्म संवत् 1550 वि. (सन् 1493 ई0) में उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले के जायस नामक स्थान पर हुआ था। इनकी एक छोटी सी पुस्तक 'आखिरी कलाम' में इनके जन्म के सम्बन्ध में लिखा है कि -

"भा अवतार मोर नौ सदी। तीस बरस ऊपर कवि बदी।
आवत उघत चार बढ़ ठाना। भा भूकंप जगत अकुलाना।।"
-(आखिरी कलाम, दोहा 4)

जायसी के पिता का नाम मलिक शेख ममरेज बताया जाता है। इनकी माताजी का नाम अज्ञात है। संभवतः इनकी माँ इनके बाल्यकाल में ही परलोक सिधार गई थी।

जायसी जी मुगल सम्राट बाबर के समकालीन थे जिसके राजगद्दी पर बैठने के बाद, बाबर की प्रशंसा के बारे में जायसी ने लिखा है कि-

"बाबर साह छत्रपति राजा। राजपाट उनका विधि साजा।।
नौ सै बरस छतिस जो भए। तब ऐहि कविता आखर कहे।।"
-(आखिरी कलाम 8, 13)

जायसनगर इनका जन्म स्थान था या नहीं इस विषय में भी निश्चय के साथ कुछ नहीं कहा गया है। 'आखिरी कलाम' में वे लिखते हैं-

"जायस नगर मोर अस्थानू। नगर क नाँव आदि उदियानू।
वहाँ दिवस दस पाहुंने आयऊँ। भा बैराग्य बहुत सुख पायऊँ।।"
-(आखिरी कलाम, दोहा 10)

इसका आशय यह है कि जायसनगर इनकी जन्मभूमि न होकर कर्मभूमि एवं साधना भूमि थी। परन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जायसनगर को ही इनकी जन्मभूमि मानते हैं और हर व्यक्ति इस जगत में अपने को पाहुना ही मानता है क्योंकि उसका जीवन-काल सीमित होता है। जायसी ने 'पद्मावत' के अंतिम भाग में अपनी वृद्धावस्था और उसके अनुभवों का विस्तार से वर्णन किया है, इससे तो धारणा यही बनती है कि "भा अवतार मोर नौ सदी" का अर्थ नवीं शती में किसी समय जन्म लेने का संकेत है, न कि सन् 900 हिजरी में। कुछ विद्वान इनका जन्मकाल 906 हिजरी मानने के पक्ष में हैं। इनके गुरू सूफी फकीर शेख मोहिदी (मुहीउद्दीन) के शिष्य थे। इन्होंने एक और गुरू के बारे में जिक्र किया है। जो इस प्रकार है-

'सैयद असरफ पीर पिआरा। जेहि मोहि पंथ दीन्ह उजियारा।
गुरू मोहदीं एवक मैं सेवा। चले उताइल जेहि कर खेवा।।'

जायसी दिल्ली के बादशाह शेररशाह के समकालीन थे। मलिक मुहम्मद जायसी अपने समय के सिद्ध फकीरों में गिने जाते थे। अमेठी के राजघराने में इनका बड़ा सम्मान होता था। जायसी अपने जीवन के अन्तिम दिनों में अमेठी से 2 मील दूर एक जंगल में रहा करते थे, इनकी मृत्यु भी वहीं पर लगभग सन् 1542 ई. में हुई थी। जंगल में राजा रामसिंह जी ने इनकी समाधि निर्मत करायी थी। जायसी के पारिवारिक जीवन के विषय में केवल यही पता चलता है कि ये बचपन में ही मातृ-पितृ-विहीन हो गये थे। इनका विवाह भी हुआ था। इनका एकमात्र पुत्र था जो दीवार के गिरने से उसके मलवे में दबकर मृत्यु को प्राप्त हो गया था। तदुपरान्त इन्हें विरक्ति हो गई थी।

जायसी के बारे में यह तो स्पष्ट है कि चेचक के प्रकोप से जायसी की एक आँख खराब हो गयी, तथा इसका असर इनके कानों पर भी पड़ा। पद्मावत के स्तुति खण्ड में आई निम्न पंक्तियाँ इन तथ्यों की पुष्टि कर रही हैं-

"एक नैन कवि महमद गुनी। सोइ विमोहा जेई कवि सुनी।
चाँद जइस जग विधि औतारा। दीन्ह कलंक कीन्ह उजियारा।।
जग सूझा एकइ नैनाहाँ। उवा सूक अस नखतन्ह माहाँ।।
जौं लहि अंबहि डाभ न होई। तौ लहि सुगंध बसाई न सोई।।
कीन्ह समुद्र पानि जो खारा। तौ अति भएउ असूझ अपारा।।
जौं सुमेरू तिरसूल बिनासा। भा कंचनगिरी लाग अकासा।।
जौं लहि घरी कलंक न परा। काँच होइ नहिं कंचन करा।।
एक नैन जग दरपन, औ तेहि निरमल भाउ।
सबहि रूपवंत पाँव गहि, मुँह जोवहिं कई चाउ।।"

-(पद्मावत, स्तुतिखण्ड 21)

इन पंक्तियों से यह पता चलता है कि जायसी की वाणी सुनकर सभी श्रोता विमुग्ध हो जाते थे। उनका भाव निर्मल था। बड़े-बड़े रूपवन्त एवं प्रभावशाली व्यक्ति उनके पाँव छूकर उनका सम्मान करते थे और उनका आशीर्वाद पाने के लिए उनके सामने खड़े रहते थे। उनका आकर्षणहीन मुख देखकर लोक हँस पड़ते थे, परन्तु जब वे उनका उपदेश श्रवण करते थे तो भाव-विभोर होकर अश्रुपात को बाध्य हो जाते थे। शेरशाह भी उनसे प्रभावित था और उनका सम्मान करता था। एक बार जायसी के कुरूप चेहरे को देखकर वह अपनी हँसी नहीं रोक पाया, तब कवि ने तत्काल प्रश्न किया, "मोहि हँसेसि कि कोहरहिं"? अर्थात् मेरी कुरूपता पर हँस रहे हैं या मेरा निर्माण करने वाले पर हँस रहे हैं? इस कथन का मर्म समझकर बादशाह लज्जित हुआ। लम्बे समय के बीमारी के बाद जायसी ने इस स्थान को छोड़कर जायसनगर (रायबरेली) में रहने लगे थे, इसलिए वे 'जायसी' कहलाए।

विजयदेव नारायण साही ने सही लिखा है कि- "जायसी का प्रस्थान बिन्दु न ईश्वर है, न कोई नया अध्यात्म है। उनकी चिन्ता का मुख्य ध्येय मनुष्य है- मनुष्य, जैसा कि वह सामान्य जिन्दगी में उठता-बैठता है, सीखता है, प्रेम करता है गृहस्थी चलाता है, युद्ध में वीरता और कायरता दिखाता है, राज्य स्थापित करता है, छल-कपट, बेईमानी और कमीनापन करता है, सम्प्रदाय स्थापित करता है, बटोर के लिए नारे लगाता है।"

जायसी एकमात्र कवि हैं जिनके सामने हिन्दू-मुसलमान अलग-अलग नहीं हैं। वे घुल-मिलकर सामान्य मनुष्य हो गये हैं। जायसी मुस्लिम संस्कृति की अपेक्षा हिन्दू संस्कृति के कुशल चितेरे हैं। उनकी पद्मावती वेदों की ज्ञाता है। रामायण और महाभारत के राम और कृष्ण तथा अन्य देवी-देवताओं में शिव-पार्वती, लक्ष्मी, हनुमान आदि का उल्लेख 'पद्मावत' में जगह-जगह पर हुआ है।

मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा प्रेमाख्यानों का उल्लेख भी महत्वपूर्ण कृतियों व कवियों को उद्घारित करता है। पद्मावत मे कुछ पंक्तियों के माध्यम से इन्होंने अपनी बात स्पष्ट की है।

"बहुतन्ह ऐस जीउ पर खेला। तू जोगी केहि मांह अकेला।।
बिक्रमाधसा प्रेम के बारां। सपनावति कहं गएउ पतारा।।
सुदैवच्छ मुगुधावति लागी। कंकनपूति होई गा बैरागी।।
राजकुंबर कंचनपुरी गएऊ। मिरगावति कहं जोगी भएऊ।।
साथा कुंवर मनोहर जोगू। मधुमालति कहं कीन्ह वियोगू।।
प्रेमावति कहं सुरसुर साधा। लखा लागि अतिरूध बर बौधा।।"

इन पंक्तियों के साक्ष्य पर स्पष्ट होता है कि पद्मावत की रचना के समय तक वे (इन पंक्तियों के कथित) कहानियाँ किसी न किसी रूप में अवश्य प्रचलित रहीं होगी जो मुख्य रूप से प्रेम की व्यंजना की ओर संकेत करती नजर आती हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. रामकुमारवर्मा आदि प्रमुख विद्वानों के अनुसार जायसी द्वारा दी गई इन पंक्तियों या पदमावत की संपूर्ण सामग्री में जायसी से पूर्व लिखे जा चुके प्रेमाख्यानो की परम्परा दिखायी देती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि सूफी हिन्दी काव्य में पद्मावती की रचना से पूर्व सूफी प्रबन्ध काव्यों की रचना प्रारम्भ हो चुकी थी जिसकी चर्चा जायसी ने पद्मावत में प्रामाणिक रूप से की है।

सूफी प्रेमाख्यानों की यह विशेषता थी कि इनके द्वारा हमें प्रेम-तत्व के व्यापक रूप को समझ पाने में अधिक सहायता मिली और इनके कारण धर्म, सम्प्रदाय अथवा वर्गगत भेदभावों को दूरकर एक सर्वमान्य समाज की स्थापना के लिए प्रेरणा भी प्राप्त हुई। देखा जाय तो जायसी ने साम्प्रदायिक सद्भाव की बात मानवीय मूल्यों की स्थापना दर्शन के आधार पर की। प्रेम मानव जीवन का सबसे बड़ा अमूल्य है जो कि हमारे जीवन एवं समाज से खिसकता जा रहा है। आचरण की शुद्धता गायब हो रही है। जायसी ने आपसी प्रेम एवं सद्भाव पूर्ण जीवन को अधिक सुन्दर माना। जैसे-

"मानुस पेम भएउ बैकुंठी। नाहिं त काह छार एक मूंठी।।
पेमहिं माहं विरह और रसा। मैन के घर मधु अंब्रित बसा।।
निसत धाई जौ मरै तो काहा। सत जौं करै बैसेइ होइ लाहा।।
एक बार जौं मनु कै सेवा। सेवहि फल परसन होइ देवा।।"

-(पद्‌मावत)

सूफी कवि जायसी ने हिन्दू घरानों में प्रचलित कथा को हिन्दू आस्था के साथ बिना किसी भेदभाव के प्रस्तुत किया है। मुसलमान होते हुए भी जायसी ने मुस्लिम पात्रों के साथ कोई पक्षपात नहीं किया है। आज तो जाति, भाषा, प्रान्त और सम्प्रदाय के कारण लोगों के बीच दूरियाँ बढ़ती जा रही हैं। राजनीति की सारी बिसाते जाति और सम्प्रदाय के आधार पर बिछाई जाती हैं। जायसी की दृष्टि में रत्नसेन और अलाउद्‌दीन का संघर्ष दो जातियों का संघर्ष नहीं बल्कि दो आदर्शों का संघर्ष है।

पद्‌मावत की कथा में हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों के अपूर्व सामंजस्य की बात करते हुए उसके सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक महत्व को रेखांकित किया गया है। जायसी हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति के पारखी कवि थे, जिनकी नजर से लोक और नगर जीवन के चित्र ओझल नहीं होने पाये। जिसमें एक ओर गाँव का ठेठ गवईपन है तो दूसरी ओर नगर की भव्यता भी मौजूद है। इस्लाम एवं हिन्दू संस्कृतियों का वर्णन आपस में घुल-मिल गया है। पौराणिक, ऐतिहासिक एवं धार्मिक सन्दर्भों का उल्लेख जगह-जगह हुआ है-

'जस मारइ कहँ बाजा तुरू। सूरी देखि हंसा मंसूरू।।
चमके दसन भएउ उंजियारा। जो जहं तहाँ बीजु अस मारा।।'

आधुनिक समीक्षकों में विजयदेवनारायण साही और रघुवंश ने जायसी को नयी दृष्टि से समझने का सफल प्रयास किया है। रघुवंश का कथन है- "कवि सम्पूर्ण जीवन को ग्रहण करता है, उसकी रचना में अच्छा-बुरा, गुण-दोष सभी कुछ अपनी विविधता के साथ प्रस्तुत होता है। इस सारे दृश्य विधान को रचना में आत्मसात कर लेने पर ही वह विवेक दृष्टि व्यंजित होती है, जो मनुष्य को मनुष्य से मिलाती है, और जिसे प्रेम की पीर कहा गया है।"

पद्‌मावत के सामाजिक, सांस्कृतिक और काव्यात्मक पक्ष की विविधता को कवि ने नये रूप में व्यंजित किया है। सम्पद्राय और जाति के साथ इस कृति में संस्कृतियों के भेद मिटते दिखायी देते हैं। आध्यात्म और रहस्वादवाद की दृष्टि

से पद्मावत भारतीय आध्यात्मिक विविधताओं के साथ आगन्तुक आध्यात्मिक विचार धारा को भारतीय बनाती है।

इनके द्वारा रचित प्रमुख ग्रंथ क्रमशः (1) पद्मावत, (2) अखरावट, (3) आखिरी कलाम, (4) चित्ररेखा, (5) कहरनामा, (6) मसलनामा और (7) कान्हावत् आदि ग्रंथ माने जाते हैं।

पद्मावत-'पद्मावत' में नागमती, पद्मावती और रत्नसेन की प्रेमकथा को विस्तृत रूप में वर्णित किया गया है। पद्मावत' कथा का वर्णन बहुत ही सुन्दर और बेजोड़ है। इसका आरम्भ ''स्तुतिखण्ड' से होता है, जिसके आदि में कवि ने ब्रह्म स्वरूप-निरूपण किया है, जो वेदान्त, विशिष्टाद्वैत और एकेश्वरवाद-इन तीनों की मान्यताओं का मिला-जुला रूप निदर्शित करता है। तत्पश्चात् इस खण्ड में पैगम्बर मुहम्मद साहब और उनके चार शिष्यों का स्मरण करने के बाद कवि ने शाहेवख्त-शेरशाह सूरी और फिर अपनी गुरू-परम्परा तथा अपने चार मित्रों का नामोल्लेख करते हुए तथा उनकी विशेषताओं का वर्णन किया। इसी क्रम में कवि ने अपना कुरूप होना, वाणी माधुर्य, पद्मावत का रचनाकाल आदि की सूचनाएँ भी इसी कृति में दी हैं। जायसी ने पद्मावत महाकाव्य मसनवी शैली में लिखा है। जो स्तुति खण्ड से ही दिखायी देती है।

'सिंहलद्वीप वर्णन' और 'जन्मखण्ड' में पद्मावती के जन्मस्थान, उसके किशोरावस्था तक पहुँचने और हीरामन तोते से सम्बन्धित कथा का समावेश किया गया है। 'मानसरोदक वर्णन' में पद्मावती और उसकी सखियों का स्नान करने, एक सखी की मणिमाला के खो जाने और उसके विलाप से द्रवित होकर सरोवर द्वारा उक्त माला वापस किये जाने की कथा वर्णित है। तत्पश्चात् हीरामन तोते का एक व्याध के फन्दे में फँस जाने तथा ब्राह्मण द्वारा उसे खरीदे जाने और पुनः रत्नसेन के हाथ में बिकने, शुक द्वारा पद्मिनी के सौन्दर्य का वर्णन सुनकर रानी नागमती का ईर्ष्यालु होने, उसकी दासी द्वारा बध से सुरक्षित होने के पश्चात् उसके द्वारा रत्नसेन के समक्ष सिंहलगढ़ के वैभव तथा पद्मावती के अनुपम सौन्दर्य का आख्यान करने तथा उसे सुनकर पत्नी और माँ के लाख रोकने पर भी राजा के हठयोगी के वेश में घर-द्वार छोड़कर प्रेममार्ग पर चल पड़ने की अत्यन्त रोचक कथा का वर्णन कवि ने किया है। बीच-बीच में आध्यात्मिक संकेत भी आते गये हैं जैसे- 'मानसरोदक वर्णन', 'नख-शिख वर्णन' और तोते के साथ हुए संवाद के प्रकरण के माध्यम से हम ये चर्चाएँ पाते हैं। एक माह की यात्रा के पश्चात् रत्नसेन समुद-तट पर पहुँचता है। वहाँ के स्थानीय

राजा गणपति ने राजोचित सम्मान के उपरान्त यह जानकर कि राजा समुद्र पार कर सिंहल जाना चाहता है, नावों की व्यवस्था कर दी। एक-एक करके सात समुद्रों को पार कर रत्नसेन सिंहलगढ़ पहुँचा जहाँ हीरामन तोते की अगुआई में उसने नगर, राज्य, राजा का महल और पद्मावती का निवास आदि देखा। फिर 20 हजार योगी शिष्यों के साथ उसने माघ मास की पंचमी को शिवमंदिर घेर लिया, क्योंकि पद्मावती पूजा के लिए मंदिर में आने वाली थी और उसके दर्शन का अच्छा अवसर था। राजा इस उद्देश्य में सफल हुआ। इधर पद्मावती को हीरामन तोते द्वारा राजा रत्नसेन के राज्य, वैभव, सौन्दर्य एवं पराक्रम आदि के विषय में जानकारी मिली। रत्नसेन के योगी-वेश में पद्मावती को पाने की कामना से सिंहलगढ़ में आ जाने के विषय में भी समाचार मिला। उसके भी हृदय में प्रेम की तड़प जाग उठी। दुबारा जब वह मंदिर पहुँची तो दोनों ने एक दूसरे को भली-भाँति देखा। पद्मावती तो चली गई परन्तु राजा उसे देखते ही मूर्च्छित हो चुका था। राजा को अपनी इस दशा पर ग्लानि हुई और चिता पर चलकर भस्म हो जाने का उसने निश्चय किया। शंकर-पार्वती को इसका पता चल गया और उन्होनें उसे समझा-बुझा कर विरत करते हुए पद्मावती के शयनकक्ष तक पहुँचने का उपाय बता दिये। उनके द्वारा प्रदत्त सिद्धि गुटिका के सहारे रत्नसेन ने किले को घेर लिया। यह समाचार पाकर सिंहलगढ़ के राजा गन्धर्वसेन ने एक बड़ी सेना को भेजकर रत्नसेन सहित सभी योगियों को बन्दी बना लिया और उन्हें शूली पर चढ़ाने का निर्देश दिया।

स्वयं शिवजी ने एक भाँट के वेश में राजा रत्नसेन के विषय में पूरी जानकारी सिंहलगढ़ के राजा गन्धर्वसेन को दी। उधर पद्मावती भी रत्नसेन को पाने के लिए तड़प रही थी। उसने धात्रि द्वारा अपनी माँ को राजी कराया। अब पिता भी सारी स्थिति समझ गये। अतः उन्होनें उल्लास के साथ दोनों की शादी कर दी। दोनों तन और मन से एकाकार हो गये। पद्मावती का राजा रत्नसेन से विवाह के साथ ही राजा ने सोलह हजार पद्मिनियों के साथ रत्नेसन के साथियों की भी शादी करा दी।

इस प्रकार चित्तौड़ के सोलह हजार कुँवारों का और स्वयं रत्नसेन का अपनी-अपनी पत्नियों से सुख-भोग करते हुए एक वर्ष का समय व्यतीत हो गया। अब विदाई का समय आया। धूम-धाम और प्रचुर दान-दहेज के साथ सबकी सिंहलगढ़ से विदाई हो गई। कथा को यहाँ तक पहुँचाने के पश्चात् कवि एक

बार फिर चित्तौड़ की ओर लौटता है। यहाँ रानी नागमती के विगत बारह माह कैसे बीते इसका 'बारहमासा' शैली में अभूतपूर्व वर्णन कवि द्वारा किया गया है।

इस प्रकार पद्मावती और रत्नसेन और आनन्दोत्सव का वर्णन 'षडऋतुवर्णन' में और नागमती वियोग का वर्णन 'बारहमासा' में करके दो स्वतन्त्र काव्यरूपों के समावेश द्वारा 'पद्मावत' की विशिष्टता को स्थापित किया गया है।

एक बार पुनः कथानक अपने पूर्व स्थान पर पहुँचता है। सिंहलगढ़ से वापसी के समय समुद्र याचक बनकर आता है। उसकी याचना पूर्ण नहीं की जाती। उसके प्रतिशोध में दान-दहेज में प्राप्त सामानों के साथ नावों पर सवार रत्नसेन का काफिला बीच सागर में भयंकर तूफान में फँस गया। सब लोग छिन्न-भिन्न होकर लहरों में बहने लगे। बहती हुई बेहोश पद्मावती को सागर पुत्री श्री लक्ष्मी ने बचा लिया और उसे रत्नसेन को सौंप दिया। लक्ष्मी जी की सखियों द्वारा रत्नसेन को भी सुरक्षित बचा लिया गया और उनकी कृपा से यह बेड़ा सुरक्षित किनारे आ गया। सभी चित्तौड़ पहुँच गये। राजा के साथ एक अन्य रानी को देखकर दीर्घकाल से वियोग-दुःख पीड़ित नागमती जल-भुन उठी। दोनों सपत्नियों में कलह छिड़ गया। रत्नसेन ने दोनों को समझा-बुझाकर शान्त किया और सभी सुखपूर्वक रहने लगे।

राजा रत्नसेन का दरबारी पंडित राघवचेतन अपने लोभी तथा अहंकारी स्वभाव के कारण राजा द्वारा दण्डित किया गया। वह अलाउद्दीन से मिल गया और उसके समक्ष पद्मावती के अलौकिक सौन्दर्य का वर्णन करके उसने चित्तौड़ पर चढ़ाई करने का परामर्श दिया। बादशाह ने पत्र लिखकर सूचित किया कि राजा रत्नसेन यदि कुशल चाहता है तो पद्मावती को उसे सौंप दे, परन्तु उसका निवेदन अस्वीकृत हुआ। फलतः बादशाह ने चढ़ाई कर दी। रत्नसेन पराजित हुआ। फिर भी बादशाह ने राजा से मित्रता स्थापित करने और चित्तौड़गढ़ देखने की इच्छा प्रकट की। रत्नसेन ने इस आग्रह को स्वीकार कर लिया। राजा ने बादशाह को भोजन के लिए आमंत्रित किया। किले को देखकर वह आश्चर्यचकित हुआ। इसी अलाउद्दीन दर्पण में पद्मावती का प्रतिबिम्ब देखकर मूर्च्छित हो गया। मूर्च्छा समाप्त होने पर राजा बादशाह को छोड़ने का शिष्टाचार पूरा करने हेतु किले के द्वारा तक आया परन्तु यहाँ तो योजना और ही थी। छलपूर्वक वह बंदी बना लिया गया। दोनों पत्नियाँ विलाप करने लगीं। रानियों की विवशता से लाभ उठाने के लिए पड़ोसी राज्य कुंभलनेर के राजा देवपाल ने दूती भेजकर पद्मावती को अपने यहाँ आकर रहने का निमन्त्रण दिया। चूँकि वह पहले से

ही रत्नसेन का शत्रु था अतः उसकी बातों में आना खतरे से खाली नहीं था। अन्ततः वह दूती चित्तौड़ से अपमानित करके भगा दी गई। तत्पश्चात् अलाउद्दीन की एक नर्तकी योगिनी के वेश में आकर पद्मावती को अपने साथ दिल्ली चलने और पति से मिलाने का प्रलोभन देने लगी। उसे भी वहाँ से भगा दिया गया।

गोरा और बादल नामक सरदारों ने रत्नसेन को मना किया था कि वे मक्कार बादशाह को किले में बुलाने और उसकी बातों में आकर विपत्ति मोल लेने का काम न करें परन्तु जब रत्नसेन नहीं माने तो वे अप्रसन्न होकर अपने घर चले गये। जब रानियों को अपना कोई हितैषी, विश्वसनीय और राजा को कारागार से मुक्त करा सकने में सक्षम कोई सहायक नहीं मिला तो अन्ततः उन दोनों ने गोरा-बादल नामक सरदारों के यहाँ स्वयं जाकर सहायता की याचना की। वे लोग इसके लिए तैयार हो गये। उस समय बादल का नया-नया गौना आया था अतः उसकी माँ ने जाने से मना किया। परन्तु कर्तव्य के समक्ष उसने इस सुख को नगण्य माना। वे चित्तौड़ आये। उनकी राय पर सोलह सौ पालकियाँ सजाई गई। उनमें से एक पद्मावती की पालकी भी थी, जिसमें एक लुहार औजारों-सहित बैठाया गया था। शेष में दो-दो योद्धा बैठा दिये गये। कहाँर भी सैनिक ही थे।

संदेश भेज दिया गया कि रानी पद्मावती बादशाह के समक्ष आत्मसमर्पण हेतु आ रही है। दिल्ली पहुँच कर सर्वप्रथम वे राजा को चित्तौड़गढ़ की कुंजी भेंट करेगी और फिर बादशाह से मिलेंगी। आज्ञा पाकर रानी की पालकी बंदी रत्नसेन के पास पहुँचाई गई। उसमें बैठे लुहार ने राजा की बेड़ियाँ काट दीं। राजा मुक्त हुआ और बादल की सुरक्षा में वहाँ से भाग निकला। गोरा ने पीछा करती बादशाही सेना को रोककर युद्ध किया। अन्ततः वह वीरगति को प्राप्त हुआ तब तक बादल राजा को लेकर चित्तौड़गढ़ पहुँच चुका था। वापस चित्तौड़ पहुँचने पर रत्नसेन देवपाल के कुकृत्य से अवगत हुआ। उसने कुंभलनेर पर चढ़ाई की। दोनों राजा मृत्यु को प्राप्त हुए। पद्मावती और नागमती विधवा हो गई। तत्पश्चात् दोनों पति की चिता पर सती हो गई। इसके बाद अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर पुनः आक्रमण किया। उसके साथ युद्ध में वहाँ के पुरूष मारे गये और उनकी स्त्रियों ने जौहर कर लिया। यही इस प्रबन्ध काव्य का कथानक है, जो दुःखान्त है। जायसी ने अपनी प्रेमगाथा की रचना प्रायः भारतीय पद्धति के अनुसार की है और उसकी सामग्री भी उन्होनें भारतीय भण्डार से ही लिया है।

जायसी की मान्यता है कि विरह का मार्ग अत्यन्त विकट और दुर्गम है। इस कठिन समय में प्रियतम को संदेश भेजना महत्वपूर्ण हो जाता है। जिसका वर्णन इस प्रकार है-

"सुनि चितउ राजै मन गुना। बिधि संदो ने कासौ सुना।।
को तरिवर अस पंखी भेसा। नागमती कर कहै संदेसा।।
को तु तूँ मीत मन चित्त बसेरू। देव कि दानौं पौन पखेरू।।
रूद्र ब्रह्म सिव बाचा तोही। सो निजु अंत बात कहु मोहि।।
कहाँ सो नागमती तुइँ देखी। कहेसु बिरह जस मरन बिसेखी।।
हौं राजा सोई भा जोगी। जेहि कारन वह ऐसी वियोगी।।
जस तूँ पंखि हौहु दिन भरहूँ। चाहौ कबहूँ जाइ उड़ि परऊँ।।
पंखि आँखि तेहि मारग लागी दुनहूँ रहाहिं।
कोइ न सँदेसी आवहिं तेहि क सँदेस कहाहि।।"
-(पद्मावती, नागमति संदोखण्ड 31)

अन्ततोगत्वा पद्मावती का कथ्य बड़ा ही सरस, रोचक और मार्मिक है। इसके बारे में लोग मानते हैं कि यह एक अद्भूत प्रेमाख्यानक प्रबन्धकाव्य है।

पद्मावत का रहस्यवाद

'पद्मावत' के रहस्यवाद में भारतीय संस्कृति के धर्म और आध्यात्म की परम्पराओं को कथा के सूत्रों और चरित्रों और पात्रों के माध्यम से जोड़ा गया है। इसे समासोक्ति शैली कहते हैं। पद्मावत में सम्पूर्ण कथा का विस्तार और पात्रों की विशिष्टताएँ भारतीय संस्कृति को ही परिभाषित करती हैं। इसी आधार पर पद्मावत के रहस्यवाद को भारतीय रहस्यवाद का इस्लाम के सूफी रहस्वाद से मिलकर नये संस्करण के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। कथा के घटनाक्रम और शैली में जिस दृष्टि को अपनाया गया है। उससे यह स्पष्ट होता है कि पद्मावत अन्योक्ति शैली की नहीं, समासोक्ति शैली की रचना है। क्योंकि इसके सभी पात्र सजीव और वास्तविक हैं। जिन्हें कथा में उनके चरित्र के अनुसार ही शामिल किया गया है। पद्मावत में पात्र वास्तविक हैं, घटनाएँ सच हैं जिनसे समाज पूर्वपरिचित है। इसी अर्थ में पद्मावत में अन्योक्ति शैली की काल्पनिकता दूर-दूर तक नजर नहीं आती। कथा के विस्तार में घटनाओं की काल्पनिकता आध्यात्मिक प्रेम के चित्रण के लिए प्रयोग की गयी है। इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

"सरवर तीर पदमिनी आई। खोंपा छोरि केस मुकलाई।।
ससि-मुख, अंग मलयगिरि बासा। नागिन झाँपि लीन्ह चहुँ पासा।।
ओनई घटा परी जग छाँहा। ससि के सरन लीन्ह जनु राहाँ।।
छपि गै दिनहिं भानु कै दसा। लेइ निसि नखत चाँद परगसा।।
भूलि चकोर दीठि मुख लावा। मेघघटा महँ चंद देखावा।।
दसन दामिनी, कोकिल भाखी। भौहैं धनुख गगन लेइ राखी।।
नैन -खँजन दुइ केलि करेहीं। कुच-नारँग मधुकर रस लेहीं।।"
-(पद्मावत, मानसरोवर खण्ड)

अतः कथानक की बुनावट में रहस्यवाद की स्थिति की उपेक्षा नहीं की जा सकती। क्योंकि जायसी ने 'पद्मावत' में स्थान-स्थान पर प्रतीकों के माध्यम से रहस्य-भावना की अभिव्यक्ति की है। उनकी यह योजना 'साधनात्मक रहस्यवाद' के लक्षणों से युक्त है। केवल कुछ ही प्रसंग ऐसे हैं, जहाँ दूसरे रहस्यवाद-स्वरूपों का प्रयोग दिखाई देता है। विशेषतया कथात्मक समासोक्ति के द्वारा ही जायसी ने रहस्यवाद की अभिव्यक्ति की है। इसके लिए उन्होनें जिन प्रतीकों को विशेष रूप से अपनाया है, उनमें 1. 'मुट्ठी भर धूल'' 2. मानव जीवन की नश्वरता के लिए, चन्द्र और सूर्य 3. क्रमशः रत्नसेन और पद्मावती के लिए तथा कहीं-कहीं विपर्यय के साथ क्रमशः पद्मावती और रत्नसेन के लिए, ''गंगा-यमुना''4. कहीं-कहीं इला-पिंगला नाड़ियों के लिए और कहीं-कहीं नागमती और पद्मावती के लिए, ''नौ पौरी'' 5. शरीर की नौ इन्द्रियों के लिए 'दसम दुआर', ब्रह्मरंध्र के लिए और 'गढ़' 6. शब्द शरीर के लिए प्रयुक्त है। इसी प्रकार के अन्य साधनात्मक प्रतीकों का प्रयोग पद्मावत में यत्र-तत्र मिलता ही है। तात्पर्य यह कि यद्यपि समासोक्ति या अन्योक्ति ही उनके रहस्यवाद को व्यक्त करने का माध्यम है फिर भी उसके स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार करना ही पड़ता है।

हठयोगियों में प्रचलित साधना पद्धति को जायसी ने अपने साधनात्मक रहस्यवाद के अनुकूल पाया है और यथास्थान अभिव्यक्त भी किया है। 'पद्मावत' का नायक रत्नसेन गोरखपंथी योगी के वेश में हाथ में किंगरी, माथे पर चक्र, गले में जोग-पट्ट तथा रूद्राक्ष की माला, कंधे पर कंधा और कानों में मुद्रा आदि लक्षणों से युक्त होकर पद्मिनी रूपी परमात्मा की खोज में निकलता है। चूँकि वह हठयोगी है, अतः हठयोग की शब्दावली का प्रयोग और उसकी प्रक्रिया का संकेत आवश्यक था, इसी को ध्यान में रखते हुए कवि ने ब्रह्मरंध्र, कुंडलिनी जागरण, अनाहत नाद और महासुख में निवास जैसी बातों का उल्लेख अनेक बार किया

है। जो हठयोग की शब्दावली से परिचित नहीं है, उन्हें तत्सम्बन्धी प्रयोगों को समझने में कठिनाई होती है। हठयोग-साधना के क्रम में मूलाधार स्थित कुंडलिनी के सहस्त्रार या ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँचने के मार्ग में जो द्वार या पड़ाव मिलते हैं। उनको पार करना पद्मावती को प्राप्त करने के लिए रत्नसेन के द्वारा सात समुन्दर पार करने से दर्शाया गया है। योग-साधना मार्ग में सहस्त्रार चक्र तक पहुँचने के साधना के कठिन पड़ाव पार करने होते हैं तब जाकर कुण्डलिनी चेतना सहस्त्रार में ब्रह्म से एकाकार करती हैं। साधना की यह यात्रा पद्मावत के प्रेमाकुल राजकुमार रत्नसेन की उदात्तता में दिखायी देती हैं। जैसे—

"अधर सुरंग पान अस खीने। राते रंग अमिअ रस भीने।।
आछहिं भीज तँबोर सों राते। जनु गुलाल दीसहिं बिहँसाते।।
मानिक अधर दसन नग हेरा। बैन रसाल खाँड मकु मेरा।।
काढ़े अधर डाभ सौं चीरी। रूहिर चुवै जौं खंडहि बीरी।।
धारे रसहिं रसहिं रस गीले। रकत भरे वै सुरंग रँगीले।
जनु परभात रात रबि रेखा। बिगसे बदन कवँल जनु देखा।।
अलक भुवंगिनि अधरन्ह राखा। गहै जो नागिनि सो रस चाखा।।
अधर धरहिं रस पेम का अलक भुअंगिनि बीच।
तब अंब्रित रस पाउ पिउ ओहि नागिनि गहि खींचु।।

-(पद्मावत, रूप चर्चा खण्ड)

रहस्यवाद का तात्पर्य दो अर्थों में भारतीय ज्ञान दर्शन में स्वीकार किया गया है-

प्रथम- स्त्री और पुरूष के प्रेमपूर्ण गोपनिय मिलन और प्रेमक्रियाओं के मानवीय पक्ष की गोपनीयता को रहस्यवाद संज्ञा दी गयी है।

द्वितीय- आध्यात्म और साधना के पथ पर लगातार परमात्मा की ओर गति करता हुआ जीव जो नित नवीन अनुभव करता है और आगे बढ़ने की बेचैनी और उत्कंठा विपरीत परिस्थितियों के बावजूद लगातार तीव्र होती जाती है। साधना के इस पथ में साधक जब चर्यावस्था या ब्रह्मस्वरूप में अपने अस्तित्व का विलय होते हुए अनुभव करता है। इस प्रकार साधक के साधना मार्ग पर प्राप्त हुए समूचे अनुभव को आध्यात्मिक रहस्यवाद की संज्ञा दी गयी है।

जोगी के रूप में रत्नसेन का पद्मावती के सौन्दर्य को प्राप्त करने के लिए कठिन पथ पर चलकर लम्बी और दुर्गम यात्रा की चुनौती स्वीकार करना, लौकिक प्रेम से विलग साधनात्मक रहस्यवाद की ओर संकेत करता है।

(च) उस्मान

हजरत निजामुद्दीन औलिया की शिष्य परम्परा में उस्मान हाजी बाबा के शिष्य थे। जहाँगीर के समकालीन उस्मान गाजीपुर, उत्तर प्रदेश के रहने वाले थे। उस्मान ने 1613 ई में 'चित्रावली' नाम का प्रेमाख्यान लिखा था।

चित्रावली-चित्रावली प्रबन्ध महाकाव्य मसनवी शैली में लिखा गया यह प्रेमाख्यान हिन्दी सूफी काव्य परम्परा के इतिहास में एक कड़ी के रूप में माना गया है। चित्रावली के प्रारम्भ में हजरत निजामुद्दीन औलिया और हाजी बाबा की प्रशंसा की गयी है। कृति के आरम्भ में ही तत्कालीन बादशाह जहाँगीर की भी भूरी-भूरी प्रशंसा मिलती है। इसके साथ गाजीपुर नगर का वर्णन भी इस ग्रंथ में किया गया है। जैसे-

"आदि हुता विधि माथे लिखा। अच्छर चारि पढ़ै हम सिखा।
देखत जगत चला सब जाई। एक वचन पै अमर रहाई।।
वचन समान सुधा जग नाहीं। जेहि पाए कवि अमर रहाहीं।।
मोहूँ चाउ उठा पुनि हीए। होउँ अमर यह अमरित पीए।।"

-(हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल)

कृति की सबसे महत्त्वपूर्ण बात कवि उस्मान ने इसके योगी खण्ड में काबूल, रूस, सीरिया, अरब, मिश्र, स्तम्बूल, गुजरात आदि स्थानों पर जोगी के रूप में काव्य नायक की यात्रा को दर्शाया गया है। यह कृति हिन्दी सूफी काव्य परम्परा की अन्य कृतियों से भिन्न है, क्योंकि इसमें कहानी लौकिक है न कि कवि कल्पित है। कहानी को नेपाल के राजकुमार के राजवंश के साथ जोड़कर साहित्यिक आधार दिया गया है। इस कृति में नेपाल के राजकुमार ने कठिन व्रत धारण करके राजकुमारी चित्रावली को प्राप्त करने के लिए निकल पड़ता है। इसी कथा को कवि ने विभिन्न स्थानों के माध्यम से हिन्दी सूफी परम्परा में अभिव्यक्ति दी है।

(छ) शेखनवी

ये सूफी कवि मुगल कालीन सम्राट जहाँगीर के समकालीन थे। इन्होंने संवत् 1676 (सन् 1619 ई.) में जहाँगीर के समय मसनवी शैली में सूफी कवि शेखनवी ने 'ज्ञानद्वीप' प्रेमाख्यान लिखा था।

ज्ञानद्वीप-यह अवधी भाषा में दोहा-चौपाई में अवधी भाषा में सूफी कवि शेखनवी द्वारा लिखा गया विशिष्ट प्रबन्ध काव्य है। इसमें राजा ज्ञानद्वीप के

द्वारा, रानी देवजानी के प्रेम को प्राप्त करने के लिए जोगी का वेश धारण करके निकल पड़ना इस कृति का मूल है। अन्य सूफी काव्य परम्परा की कृतियों के समान ज्ञानद्वीप में भी परमात्मा को प्राप्त करने के लिए उनका प्रेम और अनुभव प्राप्त करने के लिए उन्हीं अनुभवों और मार्गों से गुजरती है, जो सूफी प्रेममार्गी भक्ति का आधार है। आचार्य शुक्ल ने हिन्दी की रचनाशीलता और समाज की प्रवृत्ति को गहरे अनुभव से तौलते हुए कहा है कि 'समाज और साहित्य दोनों में किसी एक प्रवृत्ति का प्रसार होने पर उसमें शामिल होने भर के लिए कृत्रिमता जहाँ से आना प्रारम्भ हो जाती है, वहीं पर उस प्रवृत्ति या विचारधारा का समापन मान लेना चाहिए।'

16-17 वीं सदी में हिन्दी सूफी काव्य परम्परा की श्रेष्ठ कृतियाँ सामने आ चुकी थी, पर प्रेमाख्यान लिखने का जो फैशन इतना प्रचलित हो चुका था कि प्रत्येक रचनाकार अपने को सूफी काव्य परम्परा से जोड़ना चाहता था। धीरे-धीरे इसी उपक्रम में इस परम्परा का हरास हुआ।

(ज) कासिमशाह

उत्तरप्रदेश के बाराबंकी जिले के रहने वाले कासिमशाह के सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में उन्हें सूफी काव्य परम्परा के अंतिम दौर के कवियों में शामिल किया है। 'हंसजवाहिर' नाम की कृति को कासिमशाह ने लिखा था। उत्तर प्रदेश के बाराबंकी नामक स्थान पर कासिमशाह का पवित्र स्थान है। इस क्षेत्र में आज भी हिन्दु-मुसलमानों के बीच सूफी प्रेम की धारा प्रवाहित होती देखी जा सकती है। उनके द्वारा लिखित हंसजवाहिर कृति में राजा हंस अद्वितीय सुन्दरी राजकुमारी जवाहिर के अनुपम सौन्दर्य से प्रभावित होकर सूफीयाना प्रेममार्ग पर जोगी बनकर निकल पड़ता है। कहानी में लौकिक पक्ष को आध्यात्मिक पक्ष के साथ मसनवी शैली में चित्रित किया गया है। कासिमशाह के जीवन के सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती है।

हंसजवाहिर-इस कृति की रचना सनं 1731ई. में हुई थी। यह अवधी भाषा में दोहा-चौपाई के छंदों के रूप में लिखी गयी है। इसकी कथा प्रसंग में राजा हंस ने रानी जवाहिर के सौन्दर्य से अविभूत होकर उसे पाने के लिए निकल पड़ता है। यहाँ एक बात सूफी काव्य परम्परा की सभी कृतियों में समान रूप से प्राप्त होती है कि अद्वितीय सुन्दरता प्रत्येक कृति की कहानी में सिर्फ राजकुमारी के पास है और उस सुन्दरता पर अधिकार करने या उसको प्राप्त

करने के लिए कठिन-से-कठिन मार्ग पर चलकर सूफी काव्य परम्परा का नायक फकीर या जोगी का वेश धारण कर लेता है।

यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि अपने पीर या गुरू या मुर्सिद को पाने के लिए सूफी भक्तिधारा के दोनों प्रकार के सूफीयों, एक वे सूफी संत फकीर जिन्होंने प्रेमाख्यान नहीं लिखे, लेकिन वास्तविक जीवन सूफी भक्ति परम्परा के मार्ग पर चलकर व्यतीत किया और समाज को सही राह दिखायी। इन सूफीयों के प्रेम की धारा से भारतीय समाज आज सदियों बाद भी उनकी मजारों पर वह प्रेम पाने के लिए उमड़ पड़ता है। ऐसे सूफीयों में हजरत ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती, हजरत ख्वाजा निजामुद्दीन चिश्ती, हजरत ख्वाजा शेख सलीम चिश्ती आदि इस परम्परा के सैकड़ों हजारों फकीर भारत की भूमि में अपनी मृत्यु के सैकड़ों साल बाद भी भारतीय समाज से अपने प्रेम का रिश्ता जीवन्त रूप से बनाये हुए हैं।

निष्कर्षतः यह सूफी भक्ति का वास्तविक रूप है, जिसे भारतीय समाज में स्थापित करने के लिए प्रेम के तसव्वुफ के द्वारा सूफी प्रेम को कहानियों के माध्यम से हिन्दी सूफी काव्य परम्परा के द्वारा समझाया गया है।

इसी प्रकार दूसरे सूफी भक्ति काव्य परम्परा में वे सूफी संत आते हैं, जो आचार-विचार और सामाजिक प्रेम की दृष्टि से वैसा ही जीवन जीते थे, जैसा ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की परम्परा के सूफी संत और फकीर। इनमें हिन्दी सूफी काव्य परम्परा के सूफी रचनाकारों में एक नवीन विशेषता उजागिर हुई, जिसमें सूफी प्रेम को समझानें लिए समाज के समक्ष, समाज में प्रचलित कहानियों को सूफी भक्तिमय करके कृति के रूप में प्रस्तुत किया गया। इस परम्परा में कुतुबन, मुल्ला दाउद, मंझन, उस्मान, कासिमशाह, शेखनवी, नूरमुहम्मद और जायसी का पद्मावत शामिल किया जाता है। हिन्दी सूफी काव्य परम्परा की सभी कृतियों में मुख्य धारा के सूफी संतों का प्रेममार्ग, उनका फकीराना अंदाज तथा समाज के विभिन्न वर्गों की जातियों के साथ प्रेम की समदृष्टि के व्यावहारिक पक्ष को रचनाओं के केन्द्रीय तत्व के रूप में अभिव्यक्त किया गया है।

अतः सूफी संत परम्परा और हिन्दी सूफी काव्य परम्परा इन दोनों धाराओ को जबतक एक साथ विचार करते हुए, इनके मूल तत्वों का विश्लेषण नहीं किया जायेगा, तब तक हिन्दी सूफी काव्य परम्परा की प्रेम कहानियाँ भक्तिकाल की गम्भीरता धारण नहीं कर सकती। इस अर्थ में सूफी संत परम्परा का साहित्यिक रूप हिन्दी सूफी काव्य परम्परा के रूप में दिखायी देता है।

4

हिंदी सूफी काव्य : प्रेम, परमात्मा और आध्यात्म

सूफी प्रेम का स्वरूप

सूफी प्रेम काव्य सूफी सम्प्रदाय के रचनाकारों द्वारा भारतीय समाज में लोक प्रचलित प्रेम कहानियों को आधार बनाकर लिखी गयी काव्यात्मक रचनाएँ हैं जिनको आख्यान कहा जाता है। कहते है कि सूफी मत के साधकों ने प्रेम कहानियों का आश्रय लेकर उन्हीं के आधार पर प्रेमाख्यानक काव्यों की रचना की। हिन्दी साहित्य के इतिहास में मध्यकाल की भक्ति धाराओं में साहित्य की भक्तिधारा के रूप में सूफी साहित्य को शामिल किया गया है। सूफी साहित्य के मूल में इन सूफी कवियों ने परमात्मा के प्रति अपने प्रेम को अभिव्यक्त किया है। हृदय की इसी प्रेमाभिव्यक्ति को आधार बनाकर लिखी गयी रचनाएँ सूफी भक्ति धारा के अन्तर्गत हिन्दी साहित्य के इतिहास में मानी जाती हैं। ये कहानियाँ कुछ कल्पित हैं और कुछ अर्धकल्पित हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जो कहानियाँ समाज में पराकाष्ठा को लेकर समाज में प्रचलित थी, उन्हीं कहानियाँ में अपनी कल्पनाशीलता को मिलाकर, मनचाहा घटनाक्रम देते हुए प्रेमाख्यान व्यजंना की। लौकिक प्रेम की इन कहानियों के सहारे सूफी कवियों ने परलौकिक प्रेम का आभास दिया है। यह वही परलौकिक प्रेम है, जो सूफी साधना के मूल में निहित है। सूफी साधना का प्रारम्भ ही प्रेम से होता है और उसकी अन्तिम परिणति भी, प्रेम में, प्रेममय होती है। जिस तरह सामान्य

मानवीय जीवन में एक प्रेमी होता है और उसकी एक प्रेमिका होती है। प्रेमी की हर-पल, हर-क्षण अपनी प्रेमिका का सानिध्य पाने की कोशिश जारी रहती है। इस कोशिश में जो प्रेम निहित है, सूफी साधना में इसे प्रेम का मार्ग निरूपित किया गया है। सूफी साधको के लिए परमात्मा उनका परम प्रियतम है। या यों कहे कि सूफी साधक एक बैचेन प्रेमिका है और परमात्मा उनका परम प्रियतम। इस परम प्रियतम को पाने के लिए सूफी साधना पद्धति में साधक कठिन-से-कठिन रास्तों से होकर, गुजरते हुए अपने हृदय के प्रेम द्वारा, सभी अवरोधों को पार करते हुए परमात्मा से जा मिलता है। सूफी भक्ति के इस अलौकिक प्रेम को भारतीय समाज में प्रचलित प्रेम की कहानियों के माध्यम से प्रेम की अधीरता का चित्रण, मानवीय रूप में किया गया है, जो सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेने वाला है। हिन्दी साहित्य में जितने प्रेमाख्यानक काव्य लिखे गये हैं, उनमें कहानियों की ऐतिहासिकता और घटना क्रम सत्यता की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। इन काव्यों में भारतीय कथानक रूढ़ियों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। कुछ प्रेमाख्यानक काव्यों में ईरानी कथा परम्परा का प्रयोग भी देखने को मिलता है।

भारतीय प्रेमाख्यानक काव्यों में प्रेम की अधीरता को चित्रित करने के लिए पशु-पक्षियों द्वारा नायिका के रूप सौन्दर्य का वर्णन, मन्दिर, चित्रशाला आदि में नायिका का दर्शन, चित्र या स्वप्न में नायिका को देखकर प्रेम उत्पन्न होना आदि भारतीय कथा परम्परा की रूढ़िया हैं, जो सूफी काव्य परम्परा के इस काल के प्रतिनिधि आख्यानों में प्रयोग की गयी हैं। ठीक इसी तरह से देवी-देवताओं की कृपा से कार्य का सम्पन्न होना या उसमें बांधा पहुँचना। राजकुमारीयों का उड़ना, राजकुमारी का प्रेमी के प्रेम में विह्वल होना और प्रेमी द्वारा राजकुमारी का अपहरण या गिरफ्तार करा लेना, यह इरानी कथा परम्परा से लिया गया है।

इन प्रेमाख्यानों में कवि लौकिक प्रेम का वर्णन करता हुआ, बीच-बीच में अलौकिक प्रेम के संकेत करता जाता है। नायिका का वर्णन इन काव्यों में कुछ इस प्रकार से हुआ है कि पाठक उसमें सहजता से ही परम प्रियतम परमात्मा का रूप देखने को मजबूर हो जाता है। इस अनुपम नायिकाका सौन्दर्य प्रकृति की सभी वस्तुओं और व्यापारों में प्रतिबिम्बित होता दिखायी देने लगता है। सूफी कवियों ने लौकिक प्रेम की कहानियों को भी अपनाने में संकोच नहीं किया, इसका कारण यह रहा है कि आध्यात्मिक प्रेम की प्राप्ति में वे लौकिक प्रेम को सहायक मानते हैं। जामी की एक कविता में कहा गया है कि-

"इस संसार में तुम सैकड़ो उपाय कर सकते हो लेकिन एक मात्र प्रेम ही ऐसा है, जो तुम्हारे अहं से भी तुम्हारी रक्षा करेगा। सांसारिक प्रेम से भी तुम मुख मत मोड़ो, क्योंकि परम सत्य तक पहुँचने में वह तुम्हारा सहायक सिद्ध हो सकता है।" (पृ. 937 हिन्दी साहित्य कोश भाग-एक)

सूफी काव्य में पहले परमात्मा और पैगम्बर की स्तुति रहती है। इसके बाद वे अपने गुरू या पीर का परिचय देते हैं तथा रचनाकाल लिखते हैं। इसके साथ ही अपने समय के राजा या बादशाह का भी उल्लेख करते हैं।

हिन्दी सूफी कवियों ने भाषा के स्तर पर प्रतिनिधि भाषा के रूप में अवधी को महत्व दिया है। छंद के स्तर पर दोहा और चौपाई को इस काल की रचनाओं में अधिक प्रयोग किया गया है। जायसी कृत पद्मावत में सात चौपाईयों के बाद दोहा आता है। जबकि मृगावती और मधुमालती में 5 चौपाईयों के बाद दोहे का क्रम मिलता है। परवर्ती महाकाव्य 'रामचरितमानस' में गोस्वामी तुलसीदास ने आठ चौपाइयों के बाद दोहों का क्रम रखा है। इससे यह स्पष्ट होता है कि इस काल की रचनाओं में अपने-अपने स्तर पर कवियों ने छंद के प्रयोग की अपनी अलग पहचान बनायी है। इनके काव्यों में दोहा और चौपाई की समरूपता समान रूप से दिखायी देती है।

यद्यपि हिन्दी साहित्य में सूफी प्रेमाख्यानों की रचना का प्रारंभ उस समय से हुआ जब हिन्दी साहित्य के इतिहास का आदिकाल प्रायः बीत चुका था और वीरगाथा के नाम से अभिहित किये जाने वाले रासो साहित्य का आदर्श बहुत कुछ फीका सा पड़ने लग गया था। उस काल की रचनाओं में जिस प्रेम पद्धति का वर्णन अधिक विस्तार के साथ मिलता था उन राजाओं का वासनात्मक प्रेम था, जो किसी सुन्दरी को अपने लिए केवल भोग्य वस्तु समझा करते थे, और जो उसे उसके माता-पिता के यहॉ से अपहरण करके अथवा युद्ध में जीतकर लाने का प्रयत्न करते थे। उनके यहॉ अपनी पत्नियॉ भी रहा करती थी। जिनसे उनके दाम्पत्य-प्रेम का निर्वाह भलि-भॉति हो सकता था, किन्तु अधिक सुन्दरियों की उपलब्धि उनके लिए एक गौरव की बात थी। सुन्दरियों के लिए युद्ध होते थे। कन्याहरण भी राजाओं के लिए सामान्य बात थी, और ऐसे अवसरों पर वे राजा या सामंत अपने शौर्य का भी परिचय देते थे। इस प्रकार की घटनाओं से भरपूर एवं कभी-कभी स्वच्छंद प्रेम की घटना से ओत-प्रोत प्रेमाख्यानक काव्य में अपना स्थान सुनिश्चित करते है। मधुमालती, मृगावती, पदमावत आदि रचनाओं में तत्वों के आधार पर इन्हें सूफी प्रेमाख्यानक काव्य परम्परा की महत्वपूर्ण

रचनाओं के रूप में माना गया है। इन रचनाओं में राजा-रानी के प्रेम की भारतीय समाज में प्रचलित कथा को आधार बनाकर चित्रित किया गया है। जिसमें भक्ति साधनापक्ष के सभी सोपान क्रमशः कृतियों के वर्णन में समाहित किये गये हैं।

सूफीमत में आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध

सूफी-साधना और साहित्य में प्रेम का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी साधना प्रेम की साधना है, उनका साधना मार्ग प्रेम-पंथ है, उनका साध्य प्रेम-प्रभु है। उनका एक भरोसा, एक आस और एक विश्वास वाला प्रेम ही है। यदि सूफी साधकों को प्रेमी साधक कहा जाय तो असंगत न होगा। प्रेम उनके काव्य के समस्त प्रतीकों में सर्वश्रेष्ट प्रतीक है, रति का जो आलंबन हैं वही प्रियतम का प्रतीक है। सूफी चाहे जिस किसी को प्रेम का पात्र कहें परन्तु उनका प्रियतम परमात्मा ही है। उसी प्रियतम को वे अपने प्रेम का आलंबन मानते हैं, उसी के प्रेम में समस्त संसार को नियमग्न देखते हैं। प्रेम के पुल पर चलकर ही सूफी साधक भवसागर पार करते है, प्रेम ही उनका अमोघ अस्त्र या परम साधन है।

इनके काव्य में मानव स्वयं परमात्मा का अंश है। उसमें सूफी भी दिव्य स्रोत से ही आया है। इस्नुल अरबी के अनुसार प्रेम का मूल कारण सौन्दर्य ही है। परमात्मा का सौन्दर्य, प्रकृति के सौन्दर्य की तरह प्रेम किये जाने के लिए अपनी ओर प्रवृत करता है। परमात्मामय सौन्दर्य को देखने के लिए दर्पण-रूपी विश्व का निर्माण किया है।

'जापु जापु चाहसि जो देखा। जगत साजि दरपन के लेखा।
घट- घट जस दरपन परछाहीं। नान्हें मिला दूर फुनि नाहिं।।'

सच में सौन्दर्य की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती। जिस पदार्थ विशेष की ओर जिसका मन आकर्षित हो जाय, वही सुंदर है। सौन्दर्य के अपने-अपने प्रतिमान होते हैं। साहित्य का सौन्दर्य प्रकृति और मानव के सौन्दर्य से मिलकर प्रकट होता है और उसको समझने-देखने की दृष्टि, सौन्दर्य दृष्टि कहलाती है। साहित्य में सौन्दर्य के प्रतिमान काव्य के हेतु एवं उसके लक्ष्य का उद्देश्य और उसके चरित्रों में निहित होते हैं। सूफी भक्ति परम्परा में रचित प्रेमाख्यानक कृतियों के मूल में समान रूप से मानवीय सौन्दर्य के स्थूल प्रतिमान से कथा प्रारम्भ होती है और आत्मिक सौन्दर्य के चरम पर परवान चढ़ती है। स्थूल सौन्दर्य के आकर्षण के वशीभूत होकर इन प्रबन्ध काव्यों में नायक

नायिका को प्राप्त करने के लिए उद्दत होता है और इस मार्ग में लगातार आगे बढ़ते हुए अलौकिक जगत की सीमा में कब प्रवेश कर जाता है, पता ही नहीं चलता। यही लौकिक जगत से अलौकिक जगत की यात्रा का मार्ग है जिसे भारतीय सूफी काव्य परम्परा कहा गया है। यह भारतीय सूफीमत उत्तर भारत के विभिन्न सूफी संतों ने अवधी भाषा में अपने प्रबन्ध काव्यों के माध्यम से विरचित किया है।

अन्तः सौन्दर्य से तात्पर्य समत्व और पूर्णता से है। मानव के समस्त प्रयत्नों के मूल में सुन्दर और पूर्ण होने का लक्ष्य है। परम-सौन्दर्य रूप का विधान ईश्वर में ही माना गया है। अतः विश्व में एक मात्र वही पूर्ण है। वह मानवीय जीवन का आदर्श है, उस पूर्णता को प्राप्त करने के लिए मानव ईश्वर मे अनुरक्त होता है। वह उसके साक्षात्कार की अभिलाषा करता है। सचमुच प्रेम के लक्षणों में प्रियतम के साक्षात्कार की कामना महत्वपूर्ण है।

यद्यपि सुंदरता में एक जादू होता है, जो मानव चित्र को अभिभूत कर लेता है। सौन्दर्य और प्रेम में अन्योन्य संबंध है। सौन्दर्य जितना अधिक होगा, प्रेम की मात्रा उनती ही तीव्र होगी, ईश्वर सुंदरतम है, अतः उसका प्रेम ही वास्तविक एवं पूर्ण प्रेम है। वेदों में ईश्वर की उपासना का भाव वर्तमान है, उसके मूल में एक यही कारण है। प्रारंभ में सौन्दर्य की स्तुति या प्रशंसा की भावना रहती है, यही भावना विकसित होकर तल्लीनता के रूप में परिणित हो जाती है। ईश्वरीय प्रेम ज्ञान-जन्य होता है। अतः इससे प्राप्त आनंद अनिवर्चनीय होता है। ईश्वरीय सौन्दर्य ही वास्तविक सौन्दर्य है या भक्त या प्रेमी विस्मय से अभिभूत होकर निर्वाक रह जाता है।

प्रेमानुरागी मर भी जाए, तो अमर हो जाता है। प्रेमी केवल प्रेमी ही नहीं रहना चाहता वह प्रियतम से मिलकर तादात्मता के स्वरूप का अनुभव करना चाहता है। वह प्रेम-पंथ पर चलने के लिए सर्वस्व त्याग देने को प्रस्तुत रहता है। शलभ (पतंगा) दीपकमय हो जाना चाहता है, कमल जल के सूखने के साथ ही सूख जाता है, मछली जल के वियोग में तड़प-तड़प कर प्राण त्याग दे देती है। वास्तव में प्रेमी, प्रेम की अग्नि में झुलस-झुलस कर सदैव प्राण दे देने को उद्यत रहता है।

सूफी संत संसार से अपना संबंध रखते हुए भी किसी भी तरह की वासनाओं को अपने जीवन पर हावी नहीं होने देते।

ईरान के अनेक सूफी महात्माओं में अल गजाली, बाबाफरीद, आदि ने वैवाहिक जीवन का समर्थन किया है मात्र संतानोत्पत्ति के लिए नहीं, अपितु ताजगी और संतोष के लिए भी वैवाहिक जीवन आवश्यक है। पत्नी के साहचर्य से हृदय को संतोष का अनुभव होता है। इससे ईश्वर की सेवा करने के लिए शक्ति मिलती है। वासना के परिष्कार के साथ ही लौकिक प्रेम ईश्वरीय प्रेम में परिणित होने लगता है। सूफियों के अनुसार सांसारिक प्रेम (इश्कमजाजी) ईश्वरीय प्रेम (इश्कहकीकी) का प्रथम सोपान है, संपूर्ण सूफी प्रेम काव्य इसी आधारशिला पर अंलकृत हैं।

सचमुच प्रेम की मदिरा अत्याधिक गुणकारी है, उससे शरीर और प्राणों को शक्ति प्राप्त होती है, उसके पीने से रहस्य उद्घाटन होता है। सूफी भक्ति के विषय में भक्ति में डूब जाने और अपने अस्तित्व को ईश्वर के अस्तित्व में मिला देना ही इस मार्ग की सफलता को इंगित करता है। प्रेम की यह मदिरा भक्ति के नशे में चूर होकर एक सूफीमत का पथिक इस मार्ग पर अपने जीवन और अपने आप का विस्मय करते हुए भक्ति के चरम पर पहुँचकर अपने जीवन और मृत्यु से मुक्त जीवन का अनुभव करता है। इसलिए वह भक्ति की इस मदिरा का एक घूंट पीने के लिए जोगी बनकर निकल पड़ता है।

सूफी प्रेम के माधुर्य के कारण यह कड़वा जीवन और इसके सारे दुःख-दर्द जीवन की मिठास में परिवर्तित हो जाते हैं। भक्ति और प्रेम के इस मार्ग पर चलते हुए साधक को कांटों भरे पथ आकर्षित करते हैं और वह तमाम कठिनाइयों को पार करता हुआ। अपने मुर्शिद से एकाकार कर जाता है। इस प्रेम की एक विशेषता है जिसमें इस मार्ग का अनुयायी लगभग सभी सूफी प्रेम कथानकों में राजघराने का राजा या राजकुमार ही दिखायी देता है जो अपने राज-पाठ और वैभव को त्यागकर ईश्वर के अनन्य प्रेम की प्राप्ति के लिए दुर्गम मार्ग पर जोगी बनकर निकल पड़ता है। इसका तात्पर्य यह है कि जब राजा या राजकुमार अपना राज-पाठ सिंहासन छोड़कर सूफी भक्ति धारा में आकर जोगी, फकीर बन जाता है तब समाज के सभी तबकों और वर्गों के लोग भी इस धारा में आकर ईश्वरीय प्रेम का साक्षात्कार कर सकते हैं।

निःसंदेह प्रेम स्वर्गीय गुणों का स्रोत है। जब इश्कमजाजी, इश्कहकीकी में परिणित हो जाता है, तब साधक आत्मांनद पाता है। वह ध्यान द्वारा ईश्वरीय सौन्दर्य पर विस्मय-विमुग्ध होता हुआ चरम साक्षात्कार के लिए प्रयत्न शील रहता है, एक ऐसी स्थिति आती है जिसमें प्रेमी स्वयं प्रेम रूप हो जाता है। प्रेम एक

ऐसी रागिनी छेड़ देता है जिसके प्रभाव से प्रेमी का संपूर्ण व्यक्तित्व प्रेममय हो जाता है। सूफियों की रति में माधुर्य के साथ-साथ मानवीय भाव भी रहता है, परन्तु उसमें निहित वासना को पवित्र वासना ही कहना उचित है, क्योंकि ईश्वरीय रति का आनंद नित्य और शान्तिप्रिय होता है। इसके पूर्व कुछ पंक्तियों में कहा जा चुका है कि ईश्वर से प्रेम करना, उसकी प्रेमानुभूति द्वारा उसका साक्षात्कार एवं उसकी सत्ता में अपनी सत्ता का विलय ही सूफी प्रेम-साधना का चरम उद्देश्य है। साधक की उत्कट प्रेमानुभूति अनिवर्चनीय होती है। उसकी अभिव्यक्ति अत्यंत कठिन है। यही कारण है कि सूफी कवि प्रायः प्रतीकों या रूपकों का माध्यम ग्रहण करते हैं।

मध्ययुगीन हिंदी साहित्य की प्रधान प्रेरणा धर्म-साधना ही रही हैं। धर्म-साधना के परिणाम-स्वरूप धर्म ग्रंथों के वातावरण में सुंदर कवित्व का विकास हुआ है। पदमावत और रामचरितमानस के सौन्दर्य का मूल प्रेरणा स्रोत है। बौद्धों, योगियों, सूफियों, निर्गुणियों तथा सगुण मार्गी भक्तों के साहित्य का केन्द्र बिन्दु ईश्वर या प्रियतम के साथ लीला या उसी की साधना प्रेमपरक रही है। वह भक्त-हृदय की रागत्मिकता वृत्ति का प्रसाद पद्‌मावत और चित्ररेखा में जायसी ने अपनी प्रेम-साधना का सविस्तार विवेचन किया है। चित्ररेखा में उन्होने स्पष्ट किया है-

'जब लगि विरह न होई तन हिये न उपजल प्रेम।
तब लगि हाथ न आव तप करम, धरम, सत, नेम।'

अर्थात् विरह का हृदय में उत्पन्न होना अत्यंत आवश्यक है, पद्‌मावत की समस्त कथा का केन्द्र प्रेम-साधना ही है। वस्तुतः विरहानुभूति सूफी साधना का प्राण है। जायसी ने अपने को प्रेम मार्ग का मधु भौंरा कहा है।

'मुहम्मद मलिक प्रेम मधु भौरा।'

उन्होंने प्रेम-प्रीति का अंत तक निर्वाह किया है -

'हाथ पियाला साथ सुराही, प्रेम प्रीति लइ और निबाही।'

जायसी को उनके पीर सैय्यद अशरफ की कृपा से उनके हृदय में प्रेम-दीप प्रज्जवलित हुआ था -

'लैसा हिये प्रेम कर दिया। उठी जोति या निरमल दिया।'

हीरामन तोता द्वारा वर्णित पद्‌मावती के नख-शिख वर्णन के अनंतर राजा रत्नसेन के हृदय में प्रेम-भाव का उदय होता है। वह अपना राज-पाठ, सुख, वैभव

और भोग आदि का परित्याग करके जोगी बन जाता है और तब तक प्रयत्न करता है जब तक उसे प्राप्त नहीं कर लेता। चितौड़ से सिंहल तक का मार्ग एक प्रकार से प्रेम पंथ ही है। इस पर रत्नसेन अपने प्रेम मार्ग पर अनेक प्रकार की दुर्गम स्थितियों को सहता हुआ साधना के मार्ग पर गतिमान होता है। जैसे-

'प्रेम सुनत मन मूल न राजा। कठिन प्रेम सिर देइ तो छाजा।
प्रेम फांद जो मरा न छूटा। जानु हीन्ह बहु फांदन छूटा।'

पदमावती का रूप-वर्णन सुनकर राजा मूर्छित हो गया, इस प्रेम-भाव को भला कौन जान सकता है। प्रेम-मार्ग निश्चय ही दुर्गम है। पर दुःख के भीतर भी प्रेम और सुख का अमृत स्रोत रहता है, इसको वही पाता है जो मृत्यु की भी पीड़ा सहने को उद्यत हो, फिर तो प्रियतम का मिलन और फिर प्रेम प्राप्ति का आनन्द ही मिलता है। प्रेम प्रायः सौन्दर्य जन्य होता है, चंदायन, मृगावती, पदमावती, मधुमालती, इन्द्रावती आदि सभी अप्रतिम-सौन्दर्य सम्पन्न हैं। उनके सौन्दर्य की भास्वरता ईश्वरीय सौन्दर्य की ही भास्वरता है। इसलिए तो नायक उनके लिए जोगी भिखारी तक बनते हैं। प्रारंभ में प्रायः प्रेम वासनात्मक होता है। विरह की अग्नि में जलकर प्रेमी कंचन की तरह कांतिमान हो जाता है। हीरामन से पद्मावती ने कहा है कि यदि मैं चाहूँ, तो उससे आज ही मिल सकती है, परन्तु अभी तक उसे मेरा मर्म ज्ञात नहीं है। मुझे अभी पूर्णतः ज्ञात नहीं है कि वह प्रेम के रंग में रंग गया है या नहीं-

'पै सो मरमु न जाने मोरा। जाने प्रीति जो मरि के जौरा।
हो जानत हों अवही कांचा। नावह प्रीति रंग थिर रांचा।।'

इस प्रकार जब दोनों का मिलन होता है, तो प्रेमी मरकर भी अमर हो जाता है और वे पुनः कभी अलग नहीं होते। जायसी का कथन है कि जो कोई इस नश्वर संसार में उदय होता है वह अवश्य अस्त भी होता है। अलाउद्दीन और राघव कहाँ हैं? वह रूपवती रानी पद्मावती कहाँ है? रत्नसेन और हीरामन कहाँ हैं? वे सब नहीं रहे, पर उनकी प्रेम कहानी जगत में है-

'कहँ सुरूप पदमावती रानी। कोइन रहा जग रही कहानी।
धन सोई जग कीरतिजासू। फूल मरै, पे मेरे न बासू।'

अलाउद्दीन भी पदमावती का प्रेमी था, पर उसका प्रेम सच्चा नहीं था, उसकी वासना का पुनरूत्थान नहीं हुआ था। वह पद्मावती का केवल शरीर

चाहता था। वह बाल सौन्दर्य पर प्रलुब्ध कामी पुरूष है। उसमें एक सच्चे साधक की सी तपस्या, लगन और त्याग नहीं है। उसमें शक्ति-जन्य अहंकार, तृष्णा और वासना का प्राधान्य है। इसलिए उसके हाथ में चिता की राख ही मात्र आती है।

'छार उठाइ लीन्हि एक मूठी। दीन्ह पहाड पिरथिमी झूठी।'

प्रेम-मार्ग के पथिक के लिये हृदय की पवित्रता आवश्यक है, कपटी हृदय से प्रेम-प्रभु का मिलन असंभव है। महादेव गीत ने रत्नसेन को उपदेश दिया था कि दुःख सहो, प्रेम-पथ पर गतिमान रहो-

'कहेसि-न रोव, बहुत ते रोवा। अव ईसर भा दारिद खोवा।
अब तें सिद्ध भएसि सिधि पाई। परपन क्या हूति गई काई।'

प्रेम-विरह का अनुभव करने वाला साधक धन्य है। वियोग की चिनगारी का नाम सुनते ही पृथ्वी और आकाश कॉप जाते हैं, पर धन्य हैं विरही और धन्य हैं उसका हृदय जहाँ विरह की वह चिनगारी ही नहीं, उसकी संपूर्ण ज्वाला भी समा जाती है।

'मध्यद चिनगी प्रेम के, सुनि महि गगन डराय।
धनिबिरहि और धनि हिया, यहं असअगिनि समाह।'

अर्थात् जिसके हृदय में विरह की निष्पत्ति होती है, वह धन्य-धन्य हो जाता है। प्रत्येक स्थान पर ज्योतिर्मय नग उत्पन्न नहीं होते, सर्वत्र जल में मोती नहीं मिलते, प्रत्येक वन मे चंदन के वृक्ष नहीं होते, वैसे ही प्रत्येक प्राणी के हृदय में ईश्वर की विरह-भावना भी उत्पन्न नहीं होती। विरले अध्यात्म के पथिक ही इस विरह भाव का अनुभव करते हैं-

'थल-थल नग न होहिं जेहिं जोती। जल-जल सीप न उपनहिं मोती।
बन-बन विरिध न चंदन होई। तन-तन विरह न उपने सोई।।'

जब प्रिय निकटतम होते हए भी दूर से दूर रहे, तब प्रेमी के विरह संताप का पारा सहन शक्ति के चरम बिन्दु को स्पर्श करने लगता है। पुष्प में सौरभ और दुग्ध में घृत की भांति वह तत्वों का तत्व सब में ओत-प्रोत है। वह प्यारा प्रभु इस घट को ही अपना घर बनाकर रमण कर रहा है, आत्मा के ही अंदर परमात्मा विद्यमान है। देश काल की किंचित्मात्र भी दूरी दोनों में नहीं है। परन्तु भावना की दृष्टि से परमात्मा जीव से कितनी दूर है। साधक प्रभु का सामीप्य

चाहता है, वह उसके विरह में अतीव क्लेष सहता है तथा अग्नि और कौर खाकर जीव धारण करता है-

'फूल बास धिक जिमि नियर मिले एक ठांह।
तस कंता घट घर कैं, जियहुं अगिनि कहं खाह।।
विरह की ज्वाला बडी दाहक होती है-
जग महं कठिन खरग के धारा।
तेहि ने अधिक विरह के झारा।'

पद्मावती भी विरह की अग्नि में तप रही है, उसे नींद आती मानो कोई सेज पर कंटक बिछा गया हो। जब तक जीव, ईश्वर से मिल नहीं जाता यह तड़प बनी रहती है और मिलन के पूर्व विरह का जगाना अत्यंत आवश्यक है। सच तो यह है कि विरह के बिना प्रेम होता ही नहीं। अतः सूफी काव्यों की कथाएँ मूलतः लोकिक प्रेम कथाएँ हैं किन्तु इन्हीं लौकिक कथाओं के माध्यम से कवियों ने ईश्वरीय प्रेम की अभिव्यंजनाएँ की हैं। प्रेम-पीर साधनात्मक जीवन दर्शन का जैसा काव्यात्मक निरूपण पद्मावत में हुआ है, वैसा हिन्दी के शायद ही किसी काव्य में हुआ हों।

भारतीय भक्ति में प्रेम का तथ्य पहले से था, पर साधना के लिए प्रेम को सूफी कवियों ने ही प्रेम को माध्यम बनाकर अपना स्थान कायम किया। हिंदी सूफी काव्य में मूलतः कथाएँ हैं, नायक सबके सब प्रेमी हैं, नायिकाएँ अत्यंत रूपवती हैं- उनके रूप, गुण, या स्वप्न दर्शन, चित्र दर्शन से अभिभूत होकर नायक उनकी खोज में निकल पड़ता है। अनेक कठिनाईयों को पार करता है और उसे प्राप्त करता है। विवाह से पूर्व इन कवियों ने नायक-नायिका दोनों को विरह प्रेम में तड़पते हुए चित्रित किया है। पदमावत में रूप, गुण, श्रवण जन्य प्रेम से कथा आगे बढ़ती है। चित्रावली में चित्र दर्शन-जन्य प्रेम का सहारा लिया गया है, अनुराग बासुरी में मोहनमाला देखकर प्रेम प्रस्फुटित होता है, इन्द्रावती का राजकुंवर स्वप्न-दर्शन से प्रेम पथ पर चल पड़ता है। इन कवियों ने लौकिक प्रेम की कहानियाँ ली हैं, परन्तु उनको माध्यम बनाकर ईश्वर के अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना की है।

अतः इन सूफी कवियों ने प्रेम-पीर और विरह को बड़ा महत्व दिया है। प्रियतम की वियोगानुभूति के अत्यंत मनोरम वर्णन इनके काव्यों में भरपूर मिलता है। विशेष रूप से नायिका द्वारा विरह में बारहमासा वर्णन और अन्य विरहों के लिए प्रमुख स्थान प्राप्त है। लौकिक कथाओं का यह विरह ईश्वरीय प्रेम की

भूमिका पर पहुँचकर बड़ा दिव्य हो उठता है। भारतीय साहित्य में विरह और प्रेम की प्रतिष्ठा की दृष्टि से हिन्दी सूफी कवियों का काव्य बहुत ही महत्वपूर्ण है।

सूफी साधना-सिद्धान्त

सूफीयों के साधना सिद्धान्तों और उपदेशों का विश्लेषण किया जाय तो पायेंगे कि उनमें बौद्ध, अफलातूनी, यहूदी, मसीही, वेदान्ती योग और इस्लामी मान्यताओं का अद्भुत सामंजस्य है। इनमें भी 'प्रेम की पीर' का महत्व सर्वाधिक है। इसलिए इसे प्रेममार्गी साधना सम्प्रदाय माना गया है। इस्लाम का एकेश्वरवाद इस मत में आकर अद्वैतवाद में बदल गया है। बौद्ध और नाथसिद्धों से इन लोगों ने योग-साधना के सिद्धान्तों को ग्रहण किया। सूफी साधना का ज्ञान पक्ष उपनिषदों से और उसकी प्रेममूला भक्ति पुराणों से प्रभावित है। वैष्णवों की प्रपत्ति और हिंसा भी उन्हें ग्राह्य थी। सूफीमत का दार्शनिक सिद्धान्त विशेषतः 'फना' (सर्व क्षणिक्रम) का सिद्धान्त बौद्ध दर्शन के 'क्षणिकवाद' तथा 'शून्यवाद' की प्रतिच्छाया है। योग और ज्ञान मार्ग का 'पिण्ड' में ब्रह्माण्डवाद' ही सूफियों का अपने यार को दिल में ही देखने और पाने के उपक्रम का प्रेरक है।

इन कारणों और तत्वों का प्रभाव है कि सूफियों का आराध्य अर्थात् खुदा या अल्लाह 'जमाल' (क्षमाशील) 'जलाल' (शक्तिसम्पन्न), और 'कमाल' (अलौकिक) है। वह सर्वव्यापी सर्वद्रष्टा, सर्वशक्तिमान, निर्गुण, निराकार, अनादि, अनन्त, कर्ता-भर्ता, संहारक और जगत का एक मात्र चिरसत्य है। तदनुसार बन्दा खुदा का अंश है। सोऽहं की भाँति 'अनलहक' (अहंब्रह्म) की अनुभूति सच्चे साधक की स्वानुभूति का पर्याय है। साधक की रूह अपने प्रेमिका अल्लाह को पाने के लिए तड़पती है। उनके बीच अन्तराल उत्पन्न करने वाली शक्तियों को निष्प्रभावी बनाने तथा आत्मा-परमात्मा का मिलन कराने वाले साधनों में 'तौदीद' (जीव-ब्रह्म की एकानुभूति) 'सलात' (पूजा-उपासना) 'जकात' (दान) 'सोम' (उपवास) और 'हज्ज' (तीर्थयात्रा) को विशेष महत्व दिया गया है।

सूफी काव्य में रहस्यवाद और आध्यात्मिक पक्ष

हिंदी सूफी कवियों ने जाते-इलाही (अल्हाह की सत्ता) और सिफाते-इलाही (अल्हाह के गुण) का उल्लेख किया है। कुरान सरीफ में सिफाते-इलाही का अनेक स्थानों पर वर्णन मिलता है। कहा जाता है कि अल्लाह की जात और

वजूद (अस्तित्व) एक नहीं, उसका वजूद उसकी जात पर कायम है। वह अपनी जात से मौजूद है, वजूद से मौजूद नहीं है। वह अपनी जात से जिंदा है ध्यान (जीवन) से नहीं। वह जात से आलम है, इल्म से आलिम नहीं। वह सब में है और सब उसमें है। वह किसी ज्ञान से, वह किसी जाति से, वह किसी गुण से नहीं बल्कि सब कुछ का स्रोत वही है। वही सब बनाने वाला है और वही सब मिटाने वाला। जो कुछ है इस संसार में, वह सब उसमें है और उसी से यह कायनात है।

कुरान इस्लाम का पवित्र धर्म ग्रंथ है। कहा जाता है कि यह मुहम्मद साहब पर नाजिल हुआ था। कुरान में 30 पारे (खण्ड) 114 सूरतें 6640 आयतें और 540 रकूअ हैं। गुरूनानक ने कहा है कि कलयुग में कुरान ही एक मात्र प्रामाणिक पुस्तक है। कुरान शरीफ पूरी दुनियाँ में एक मात्र ऐसा ग्रंथ है जिसमें उसके लिखे जाने से लेकर आज 21 वीं सदी तक एक अक्षर का भी परिवर्तन नहीं हुआ है जबकि बाईबिल, वेदों, पुराणों, उपनिषदों, रामायण, रामचरितमानस, महाभारत आदि भारतीय संस्कृति और सभ्यता के धरोहर माने जाने वाले महान ग्रंथों के मूल रूप में अनेक परिवर्तन समय के अनुरूप किये जाने का प्रमाण मिलता है। भारतीय साहित्य में दुर्गासप्त शती एक मात्र ऐसा ग्रंथ है जो मूल रूप में प्राप्त होता है। इस ग्रंथ के मूल स्वरूप में तो कोई परिवर्तन नहीं किया गया किन्तु दुर्गासप्त शती के अध्यायों के अन्त में दान-पुण्य की अनिवार्यता को समाज में स्थापित करने के लिए कुछ श्लोक जोड़े गये हैं। इस दृष्टि से कुरान शरीफ संसार का लम्बे समय तक अपने मूल स्वरूप में रहने वाला महान ग्रंथ है।

हिन्दी सूफी काव्य परम्परा के कवि हिन्दु और मुस्लिम दोनों समुदायों से आये थे। भारत की गंगा-जमुनी तहजीब को समाज में इन्हीं सूफी कवियों अपने सामाजिक प्रेम से स्थापित किया। सूफी भक्ति में जाति, पंथ को लेकर कोई मतभेद नहीं था वरन् सूफी भक्तिधारा के कवियों ने भारतीय समाज में व्याप्त जाति-भेद, वर्ग-भेद, ऊँच-नीच आदि विषमताओं की समाप्ति का संदेश दिया और सूफी भक्तिधारा के द्वार सभी भेद-भावों से परे सबके लिए खोले। इन कवियों के काव्यों में आध्यात्मिक चिंतन संबंधी कुरान की आयतें और स्थापनाएँ मिलती हैं। पैगम्बर हजरत मुहम्मद साहब के कहे हुए सत्य वचन को सूफी काव्यों तथा आध्यात्मिक चिंतन के रूप में हदीस में देखा जा सकता है। हिंदी के सूफी काव्यों मे हदीस की झाँकी मिलती है। सूफियों की उपर्युक्त मान्यता में भारतीय अद्वैत का भी प्रभाव है।

हिंदी सूफी काव्यों में सृष्टि-रचना संबंधी विचार एक ओर भारतीय मतानुसार है, तो दूसरी ओर इस्लाम के अनुसार। इन कवियों ने प्रायः समन्वयात्मक रूप में ही सृष्टि-सर्जना संबंधी बातें कही हैं। जायसी द्वारा वर्णित सृष्टि-सर्जना संबंधी विचार इस्लाम के अधिक निकट और अनुरूप है-

'पवन होइ भा पानी, पानी होइ मइ आगि।
आगि होइ मह माही, गोरख-धंधे लागि।।'

सूफी कवियों और संतों ने सृष्टि के विषय में कहा है कि ईश्वर ने इस सृष्टि को बनाया है तथा वह इसके कण-कण में विद्यमान है। पहले आकाश नहीं था, धरती नहीं थी, सूर्य-चंद्र नहीं थे, केवल शून्य था- उसी अंधकार में उसने मुहम्मद साहब का नूर बनाया। संपूर्ण दुनिया की रचना उसने खेल के लिए की। वह एक अकेला था, दूसरी कोई और सत्ता नहीं थी। अठाहर सहस्र योनियों उसने ही उत्पन्न की हैं, आदमी कर्ता नहीं है, वह परछाई मात्र है, प्रत्यक्ष-परोक्ष-प्रत्येक रूप में वही है, दूसरा और कोई नहीं, उसने ही महाशून्य से सृष्टि की रचना की।

सूफीयों संतों का मानना है कि इस संसार में गुरू ही शिष्य को परमात्मा तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त करता है। इस अंधकारमय संसार में गुरू (पीर) अपने ज्ञान की ज्योति से साधक को गन्तव्य तक पहुँचाता है। जैसे रत्नसेन का गुरू हीरामन तोता। उनका मानना है कि गुरू ही भूले का मार्गदर्शक है और रहस्यों का उद्‌घाटक है जो ईश्वर से मिलाने वाला है, वही साधक की नाव का कर्णधार भी है।

'गुरू मोहदी सेवक मे सेवा। चलै उताइल जेहिंकर खेवा।।
ओहि सेवत मे पाई करनी। उधरी जीम, प्रेम कवि बरनी।।'

ब्रह्म जीव की अभेदता को इन कवियों ने सूर्य और किरण के द्वारा भी स्पष्ट किया है -

'जग मे छाई किरन सब, जोति मांझ कैलास।
तपसी थकित जगत के, बैठ सो तेहि के आस।।'

इस प्रकार सूफी कवियों ने अद्वैतवाद के अंतर्गत आत्मा और परमात्मा के एकतत्व की ओर इंगित किया है। सूफी कवि पारमार्थिक दृष्टि से अद्वैतवादी हैं, परन्तु साधनात्मक दृष्टि से वे विशिष्टद्वैतवादियों के निकट है। वे परमातत्व को अपने रागात्मक हृदय का आलंबन बनाकर उसके साथ व्यक्तिगत प्रेम संबंध

स्थापित करते हैं। वे ईश्वर के सौन्दर्य पर रीझते हैं, ब्रह्म की कल्पना वे जमाल-जलाल रूपों में करते हैं। हिंदी के सूफी कवियों ने इन दोनों रूपों का उल्लेख किया है। इन कवियों ने ईश्वर को असीम सौन्दर्य सम्पन्न माना है।

'सुरूज किरन जसि निरमल तेहि ते अधिक सरीरा।'

वही सौन्दर्य सम्पूर्ण विश्व में प्रतिभासित है। जैसे- 'रवि, ससि, नखत उसी की दीप्ति से दीपित है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने विद्वतापूर्ण विचारों और प्रमाणों के आधार पर यह स्पष्ट कर दिया था कि सामी पैगम्बरी मतों में रहस्य भावना के भीतर स्थान मिला। यहूदी, ईसाई, और इस्लाम मतों के बीच तत्वचिंतन की पद्धति या ज्ञान का स्थान न होने के कारण अद्वैतवाद का ग्रहण रहस्यवाद के रूप में ही हो सकता था। भारतवर्ष में तो यह ज्ञान क्षेत्र से निकला और अधिकतर ज्ञान क्षेत्र में ही रहा है, पर अरब फारस आदि में जाकर यह भाव क्षेत्र के बीच मनोहर रहस्य भावना के रूप में फैला। रहस्योन्मुख सूफियों और पुराने कैथोलिक ईसाई भक्तों की साधना समान रूप से माधुर्य रही है, जिस प्रकार सूफी ईश्वर की भावना प्रियतम के रूप में करते थे, उसी प्रकार स्पेन, इटली, आदि यूरोपीय प्रदेश के भक्त भी। जिस प्रकार सूफी हाल की दशा में उस माशूक से भीतर ही भीतर मिला करते थे, इसी प्रकार पुराने ईसाई भक्त साधक भी दुलहिने बनकर इस दूल्हें से मिलने के लिये अपने अंतर्देश के कई खण्डों के रंगमहल तैयार किया करते थे। ईश्वर की पति रूप में उपासना करने वाली सेफोतेरेसा आदि कई साधक भी यूरोप में हुए।

यद्यपि इन सूफी कवियों में रहस्यवादी भक्त परमात्मा को अपने परम साध्य एवं प्रियतम के रूप में देखता है। वह उस परम सत्ता के साक्षात्कार और मिलन के लिये विकल्प का अनुभव करता है। जैसे- मेघ और सागर के जल में मूलतः कोई भेद नहीं है, फिर भी मेघ का पानी नदी के रूप में सागर से मिलने को व्याकुल रहता है। ठीक उसी प्रकार की अभेद जन्य व्याकुलता एवं मिलनजन्य विह्वलता भक्त की भी होती है। जायसी की रहस्यवाद भी इसी श्रेणी का है। कवीर में जो रहस्यवाद पाया जाता है वह अधिकतर सूफियों के प्रभाव का ही रूप है। रहस्यमयी परोक्ष सत्ता की ओर संकेत करने के लिये जिन दृष्यों को वे सामने करते हैं वे अधिकतर वेदान्त और हठयोग की बातों के खड़े किए हुए रूपक मात्र होते हैं।

अतः कबीर में जो कुछ रहस्यवाद है वह सर्वत्र एक भावुक रहस्यवाद नहीं है। हिंदी के कवियों में यदि कहीं रमणीय और सुदंर अद्वैती रहस्यवादी हैं तो जायसी में उनकी भावुकता बहुत ही उच्च्य कोटी की है। वे सूफियों की भक्ति भावना के अनुसार कहीं तो परमात्मा को प्रियतम के रूप में देखकर जगत के नाना रूपों में उस प्रियतम के रूप माधुर्य की छाया देखते हैं और कहीं सारे प्राकृतिक रूपों और व्यापारों का पुरूष के समागम के हेतु प्रकृति के श्रृंगार, उत्कंठा या विरह विकलता के रूप में अनुभव करते हैं। दूसरे प्रकार की भावना पद्मावत में अधिक मिलती है। उस रहस्यमयी सत्ता का आभास देने के लिये जायसी बहुत ही रमणीय और मर्मस्पर्शी दृश्य-संकेत उपस्थित करने में समर्थ हुए हैं- जैसे पद्मावत के पारस रूप का प्रभाव-

''जेहि दिन दसन जोति निरमई। बहुते जोति-जोति और मई।।
रवि ससि रखल दिपहिं औही जोती। रतन पदारथ मानिक मोती।''
-(पद्मावत)

मानव प्रेम की कहानी के भीतर सूफी साधना में मान्य इसी विश्वास के अनुसार आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना इन कवियों का लक्ष्य प्रतीत होता है। भावात्मक रहस्यवाद में प्रेम अनिवार्य है। यही कारण है। कि पाश्चात्य और भारतीय-सभी रहस्यवादी प्रकृति के परदे के पीछे परमात्मा के दर्शन करते हैं। ऋग्वेद के पुरूष सूक्त का तो मूल प्रतिपाद्य ही समस्त प्रकृति का विराट ब्रह्म रूप में वर्णन है।

पाश्चात्य दार्शनिक वर्ड्सवर्थ की शैली में लिखी गयी अनेक कविताओं में इस प्रकार के भाव प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार जलालुदीन, रूमी, जामी आदि ने भी प्रकृति के कण-कण में परमात्मा की सत्ता को अनुभव किया है। सिंहल की घनी अमराई की अनिवर्णनीय सुखदायी छाया का वर्णन करते हुए कवि ने आध्यात्मिक संकेत किए हैं जो प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य को चित्रित करते हैं। जैसे-

''घन अमराई लाग चहुँमासा। कठा भूमि हुतलागि अकासा।।
पथिक जो पहुचे सहि के धाम। दुख बिसरै सुख होइ बिसराम।।
जेई पाई वह छाँह अनूपा। फिरि नहिं आह सहै यह धूपा।।''
-(पद्मावत)

सूफी कवियों के यहाँ प्रकृति भी साधिका रूप में आई है। वह भी परम प्रिय की साधना में निरत है। मानसरोवर साधक है, पदमावती विराट ब्रह्मज्योति रूप है, उसे देखकर सरोवर विस्मय-विमुग्ध है-

"सरवर रूप विमोहा, हिये हिलो रहि लेइ।
पॉव हुब मुक पावों, एहि मिस लहरहि देस।।" -(पद्मावत)

यद्यपि साधनात्मक रहस्यवाद को इन सूफी कवियों की एक बहुत बड़ी देन यह है कि उन्होंने इस शुष्क और योगमूलक साधनात्मक रहस्य भावना को अत्यंत सरस और मधुर बताया है। यह अवश्य है कि हिंदी के कई सूफी कवियों ने अपनी बहुज्ञता को प्रदर्शित करते हुए रसायन, हठयोग आदि की भी चर्चा की है। उनके झूठे रहस्यवाद में फसने के कारण समीक्षक खिन्न भी होते हैं। विलक्षण प्रतिभा के द्वारा कवि कई प्रकार से अपनी रहस्यात्मक की अभिव्यक्ति में सफल हुए हैं। रूप सौन्दर्य वर्णन के माध्यम से इन कवियों ने ईश्वर सत्ता की ओर इंगित किया है। इन सभी कवियों ने परदे बुंता में नूरे खुदा देखा है। चन्दायन, पद्मावती, मृगावती, मधुमालती आदि के रूप-वर्णनों के संदर्भ में अवसर पाने पर ये कवि परोक्ष सत्ता की ओर संकेत करने से नहीं चूकते।

उत्तर भारत और दक्खनी के प्रेमाख्यानों में यह प्रवृत्ति समान रूप से मिलती हैं। विरह-वर्णनों के प्रसंगों की उद्भावना के द्वारा भी इन कवियों ने रहस्यमयी सत्ता की अभिव्यक्ति की है। सूफी साधना में आध्यात्मिक विरह का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। उनके यहाँ तो समस्त सृष्टि को ही प्रियतम के विरह में जलते हुए देखा जाता है। इस संदर्भ में आस्तिकता, जागरण की स्थिति, आंशिक अनुभूति, विरहानुभूति, विघ्नावस्था, मिलन के पूर्व की स्थिति और साक्षात्कार या तादात्म्य की स्थिति को इन कवियों ने अपने ग्रंथों में अत्यंत मनोरम रूप में प्रस्तुत किया है।

सूफियों की रहस्य-साधना में प्रतीकों का महत्पूर्ण स्थान है। प्रतीकों पर अन्यत्र विचार किया जा चुका है। यहाँ इतना कथन ही पर्याप्त है कि सूफी काव्यों में प्रतीकों के माध्यम से कवियों ने ईश्वरीय सत्ता की ओर बार-बार इशारा किया है। मुठ्ठी भर धूल, नायक, नायिका, पारसरूप, गंगा-यमुना आदि प्रतीकों को इस कार्य के लिए स्वीकार किया गया है। इन कवियों ने सूफी साधना के साम्प्रदायिक प्रतीकों को तो अपनाया ही है, साथ ही भारतीय साधनात्मक और हठयौगिक शब्दाबली को भी ग्रहण किया है। घड़ियाल, नौ पौरी, दशम द्वार, दुर्ग इसी प्रकार के प्रतीक हैं।

सूफी कवियों ने अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए कथा रूपकों को चुना है। उनका मानना है कि अपनी मूलवस्तु परमात्मा के प्रति हमारा आकर्षण उसी प्रकार होता है जिस प्रकार एक प्रेमी का प्रेम किसी प्रेम-पात्र के प्रति हुआ करता है और लगभग उसी प्रकार वह प्रारंभ भी होता है, जिस प्रकार स्वप्न-दर्शन, चित्र-दर्शन, प्रत्यक्ष दर्शन और गुण कथन द्वारा कोई व्यक्ति किसी के प्रति आकृष्ट होता है। उसके विषय में अधिक समझ लेने पर उसके अभाव में, उसे प्राप्त करने के लिए उत्सुक एवं अधीर हो जाता है। उसी प्रकार एक साधक भी अपने सद्गुरू या पीर के द्वारा परमात्मा की एक झलक प्राप्त कर, उसके विषय में चिंतन करता हुआ, उसकी उपलब्धि के लिए व्याकुल हो उठता है तथा वैराग्य धारण कर उसकी ओर प्राणपण से लग जाता है, लक्ष्य प्राप्ति तक विश्राम नहीं लेता। सूफी कवि अपनी परमात्मानुभूति का परिचय इस प्रकार सीधे-साधे कथन के द्वारा देकर उसे किसी न किसी प्रेम कहानी के सहारे देने का प्रयत्न किया करते हैं, और यही उनकी रहस्य भावना की विशेषता है।

सूफी साधक परमात्मा का अनुग्रह प्राप्त करके, उसके सौन्दर्य की एक झलक मात्र प्राप्त करने के लिए साधनारत होता है। यह सोचता हुआ कि मैं उसी का हूँ, उससे अलग पड़ा हूँ, उसके साथ पुनर्मिलन के लिए वह आतुर हो जाता है। इस विरह-स्थिति का वर्णन इन कवियों ने प्रेमियों की कातरता के रूप में किया है। विरह में ही अमरत्व का गुण विद्यमान है अर्थात प्रेम का यदि अस्तित्व है, तो वह विरह के ही कारण है, क्योंकि वही प्रेम का सार है। सूफियों के वर्णनों मे आया हुआ यह प्रेम ईश्वरोन्मुख प्रेम का प्रतीक है, जो सारे ब्रह्माण्ड के मूलाधार जगनियंता के प्रति उद्यात होने के कारण प्रीति बनकर सबके हृदयों में एक समान उत्पन्न हो सकता है और जिसमें सूफी सम्प्रदाय के अनुसार परमात्मा से बिछुड़ी हुई जीवात्मा की विरह-व्यथा का आरंभ होना अनिवार्य है। जायसी ने परमात्मा से बिछड़े हुए मानव की स्थिति का अखरावट में वर्णन किया है।

सूफी प्रेमगाथा के सभी कवियों ने इसी कारण प्रेमियों को कहानियों को, कहानी के आरंभ में ही विरह-वेदना द्वारा अभिभूत कर दिया है। सूफी कवियों ने इसके अन्तर साधक के प्रयत्नों और उसके सदर्भ में आने वाले विघ्न-बाधाओं का वर्णन किया है। पर वह अपनी धुन से विरत नहीं होता, वह आगे बढ़ता ही रहता है। इन कवियों ने मार्ग के पड़ावों का भी वर्णन किया हैं। सूफीयों ने उसे मुकामात कहा है- इनकी संख्या सात बताई गई है। जिसमें अबूदिया, इश्क,

जहद, हकीक और बस्ल आदि प्रमुख हैं। वस्तुतः ये मुकामात साधक की मानसिक स्थितियाँ है, इनका कोई बाह्य स्थान नहीं है। पद्मावत में इन्हें, चारिबसेरे कहा गया है। चित्रावली में भोगपुर, गोरखपुर, नेहनगर, और रूपनगर कहा गया है और उनकी भिन्न-भिन्न दशाओं का भी परिचय दिया गया है। हकीकत या रूपनगर की दशा में साधक को प्रेम-पात्र की उपलब्धि हो जाती है। सूफी कवियों के अनुसार साधक की अंतिम दशा मिलन की होती है। साधक अपने अभीष्ट को पाकर आनंद-विभोर हो जाता है।

सूफियों द्वारा प्रेमगाथा के अंतर्गत प्रदर्शित किए गए रहस्यवाद के इस प्रकार केवल तीन मुख्य अंग है। इसका प्रथम अंग प्रारंभिक है, जो साधक की विरहवस्था को सूचित करता है, दूसरा मध्यवर्ती है जो उसके विविध प्रयत्नों का परिचय देता है और तीसरा अंतिम है, जो अभीष्ट सिद्धि का सूचक है। इन कवियों और साधकों के अनुसार इनका लक्ष्य स्वयं परमात्मा है जो एक और एकमात्र सत्य है। और जो कुछ है सो वही है और वह सभी के भीतर एवं बाहर व्याप्त होकर प्रत्येक कण व परमाणु तक को प्रकाशित किए हुए है।

अतः खुदा के साथ वस्ल की हालत में आ चुकने पर जब साधक एक सच्चे सूफी का रूप ग्रहण कर लेता है और वह खुदा के वजूद में अपने को फना कर उसके साथ वका के स्तर पर भी पहुँच जाता है। उस समय उससे यह स्वभावतः आशा की जा सकती है कि वह जगत के लिए भी कल्याणप्रद हो। हिंदी के सूफी कवियों ने अपनी रहस्यभावना की अभिव्यक्ति के संदर्भ मे उत्तम काव्य सर्जना की है। उनके अन्ततर के प्रेम की व्याकुलता अत्यंत तीव्र है और उसकी अभिव्यक्ति अत्यंत मार्मिक और सशक्त है। वे अपनी आध्यात्मिक अनुभूति में ऐसी सत्ता के साक्षात्कार का चरम प्रयत्न करते हैं जिसके साथ प्रकृति और मानव और परमात्मा की लीला निरंतर चलती रहती है। वे उसी की सत्ता की दीप्ति को सृष्टि के कण-कण में देखते हैं। लौकिक सौन्दर्य की स्वर्ग की महिमा से मंडित करके प्रकट करने का इन कवियों जैसी सामर्थ्य अन्यत्र दिखायी नहीं देती है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि हिन्दी सूफी कवियों के काव्यों में रहस्यवाद ही एक प्रकार का आध्यत्मिक अनुभव है, क्योंकि उनके आराध्य की आराधना पद्धति के मार्ग भी सगुण एवं निर्गुण ठहरते हैं, जिसमें भक्ति भावना एक ओर सगुणता की ओर झुकती है, तो वही निर्गुण-निराकार की बातों से आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख भी होता है। प्रेम एवं विश्वास से भरपूर इनके

काव्य में प्रेमी एवं प्रेमिका के मिलन से ईश्वर की प्राप्ति रहस्य को निराधार करती है, किन्तु मिलन के पूर्व अनदेखा ईश्वर के प्रति अथाह संघर्ष एंव पीड़ा की अभिव्यक्ति रहस्य एवं आध्यात्मिकता की ओर ईशारा करती है।

इस प्रकार सूफी भक्ति का मानवीय स्वरूप हिन्दी सूफी काव्य ग्रंथों में प्रकट किया गया है, जो मनुष्य को मनुष्य से प्रेम करना तो सिखाता ही है साथ-ही-साथ प्रेम के मार्ग पर अपना सर्वस्व निछावर करने की आध्यात्मिक प्रेरणा भी देता है।

सूफी काव्य में साम्प्रदायिक एकता

आज सम्पूर्ण विश्व में धर्म, सम्प्रदाय के तनाव, वैमनस्यता, देशों की सीमाएँ लांघकर एक वैश्विक समस्या के रूप में मानव जाति के सम्मुख आकर चुनौती दे रही है। एशिया, यूरोप, अफ्रीक आदि महाद्वीपों के अनेक देशों में आज जातिगत भेद-भाव, साम्प्रदायिकता, खूनी संघर्ष के रूप में मानव जाति के समक्ष मानवतावादी दृष्टिकोण को आहत कर रही है। मुसलमानों के अनेक वर्गों के बीच आज खतरनाक खूनी संघर्ष देखने को मिल रहा है। जिसमें शिया और सुन्नी के संघर्ष में ईरान और ईराक के बीच लाखों लोगों को इस धार्मिक उन्माद में अपनी जान गवाँनी पड़ी है। खाड़ी युद्ध जो ईराक के तानाशाह सद्दाम हुसैन ने पड़ोसी देश कुबैत पर हमला करके शुरू किया था, वह अब तक अपने बदले हुए स्वरूप में और भयानक रूप में आई एस आई एस जैसे मानव जाति के लिए खतरनाक बने हुए हैं। ईराक और सीरिया में जातिगत, सम्प्रदायगत संघर्ष, जो वास्तव में धार्मिक न हो करके तेल की आर्थिक लूट के लिए हो रहा है। उसमें स्त्रियों और मासूम बच्चों की बड़ी तादात में निर्मम हत्या की जा रही है। यह स्थिति विश्व के अनेक देशों की सीमाओं के भीतर और बाहर मानवता को कलंकित कर रही है। इसमें भारत के खिलाफ पाकिस्तान द्वारा किया जा रहा मजहबी आतंकवाद में लाखों बेगुनाह लोग मारे जा चुके हैं। आज पूरे संसार में परमाणु युद्ध का सबसे बड़ा खतरा दक्षिण एशिया में भारत और पाकिस्तान पर मंडरा रहा है। वहीं उत्तर कोरिया और दक्षिण कोरिया की स्थिति भी कम खतरनाक नहीं है। इजराईल और फिलिस्तीन के बीच, रूस और जार्जिया के बीच, अफगानिस्तान और तालिबान के बीच, चीन, ताईवान और जापान के बीच, तथा दक्षिण अफ्रीका के अनेक देशों के बीच जो संघर्ष खतरनाक रूप लेते नजर आ रहे हैं उनके मूल में ज्यादातर धर्म-सम्प्रदाय के विवाद उभरकर सामने

आ रहे हैं। विश्व को मानवता विरोधी इस संघर्ष से बचाने के लिए आधुनिक हथियारों एवं सेटेलाईट के सहारे इंटरनेट से चल रही इस दुनिया को बचाने का, सहेजने का कोई दर्शन नहीं है। विश्व को इस विषम परिस्थिति से निकालने के लिए सूफी दर्शन अपनी मानवीय विचारधारा और आध्यात्मिक खुलेपन के साथ मानवता को बचाने की सामर्थ्य रखता है। बशर्ते सूफीमत को सूफीमत ही रहने दिया जाय न कि उसे किसी कट्टरतावादी विचारधारा में बाँधनें का प्रयास किया जाय।

आधुनिक समाज में मजहबी उन्माद, आतंकवाद आदि के कारण सम्पूर्ण मानव जाति के समक्ष एक गम्भीर संकट उत्पन्न हो गया है। लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और देश की एकता खतरे में पड़ गई है। मध्यकाल की भाँति धर्म हमारी जिन्दगी में बराबर हस्तक्षेप कर रहा है। धर्म के गलत अर्थ के कारण तरह-तरह के दुराग्रहों, कट्टरताओं एवं संकीर्णताओं का बोलबाला बढ़ता जा रहा है। सामाजिक-जीवन असुरक्षित एवं संशयग्रस्त हो गया है। दरअसल धर्म के मूल स्वरूप को न समझने के कारण ही देश एवं विदेश में जातीय एवं साम्प्रदायिक विद्वेष पनप रहा है, सद्भाव की भावना आहत हो रही है।

वास्तव में सूफीमत, मनुष्य के अन्दर की एक ऐसी प्रेरणा, भावना, प्रवत्ति एवं व्यवस्था है, जो मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को ऊँचा उठाती है। सूफीमत सृष्टि का प्राण तत्व है जो कि 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का संदेश देता है और यह मत दया, प्रेम एवं आपसी मेल-मिलाप को बढ़ाता है।

5

हिन्दी सूफी साहित्य : काव्य विवेचन

हिन्दी सूफी काव्य में मसनवी शैली प्रमुख रूप से अपनाई जाने वाली पद्धति है। हिन्दी में मसनवी का साहित्यक अर्थ- युग्मक होता है। जिसे द्विपदी भी कहा जाता है। मास्सवी एक लम्बी, क्रमबद्ध कविता (नज्म) है। जिसमें प्रत्येक शेर के दोनों चरण (मिसरे) अन्त्यानुप्रास युक्त (काफिया) हो और प्रत्येक शेर पृथक अन्त्यानुप्रास (काफिया) वाला हो। मसनवी लेखन के विषय में कवि स्वतंत्र है। इसकी शैली वर्णनात्मक होती है। फारसी में मसनवी का उपयोग प्रायः कथात्मक साहित्य में ही हुआ है। मसनवी काव्य का ऐसा रूप है, जिसके हर शेर के दोनों मिशरे एक रदीफ और काफिये में होते हैं। मसनवी काव्य आख्यानात्मक, प्रेम-प्रबंधात्मक, वीररसात्मक और कथात्मक होता है। इसमें शेर के पहले मिशरे से तुक होता है। कसीदा, गजल और कला की तरह एक ही प्रकार की तुक पूरे काव्य में नहीं रहता। फारसी मसनवी में प्रयुक्त छंदो का प्रयोग हिंदी की मसनवी में नहीं हुआ है, केवल दक्खिनी हिन्दी के कुछ प्रेमाख्यानों में यह शैली दिखायी देती है।

मसनवी फारसी के ग्यारह विभिन्न काव्य रूपों में से एक है। अमीर खुसरो कृत 'लैलामजनू' में भी ईश्वर स्तुति, रसूल की वंदना, मेराज का बयान, पीर की प्रशंसा, शाहेवक्त का गुणगान, ग्रंथ लेखन का कारण आदि उपलब्ध हैं। अमीर खुसरो की मसनवी 'शोरी-खुसरो' में भी ये सभी विशेशताएँ पायी जाती हैं।

मसनवी का विषय पौराणिक, ऐतिहासिक, दार्शनिक, रहस्यवादी, धार्मिक आदि कुछ भी हो सकता है। मसनवी फारसी साहित्य कें प्रबंधकाव्यों की अपनी शैली है, जिसकी एक दीर्घ परम्परा है। अरबी, फारसी और तुर्की के काव्य

शास्त्रीय दृष्टिकोण से मसनवी शैली में कतिपय नियमों का पालन किया जाता है। इनमें हम्द, नजत, मकतब, शाहेवक्त की प्रशंसा आदि नियम प्रमुख हैं।

अतः स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि मसनवी फारसी में प्रेमाख्यान का कोई काव्य रूप नहीं है और न यह प्रबन्धकाव्य का सामान्य काव्य रूप है। इसका विषय प्रेम, युद्ध, धर्म, दर्शन आदि कुछ भी को सकता है। इसमें एक छंद का दूसरे से श्रृंखला-सदृश संबंध जुड़ा रहता है। इस कारण इसमें आख्यान लिखना आसान रहता है। मसनवी में प्रबंध-पद्धति ही रहे, यह भी आवश्यक नहीं है। हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानों मे हम्द की परम्परा फारसी मसनवी की परमपरा से आयी है।

मकबत- हजरत मुहम्मद के चार मित्रों (हजरत अबूबकर) उमर, उसमान और अली इनमें से किसी एक की प्रशंसा में लिखे गए साहित्य की शैली को मकबत कहते हैं। फारसी की मसनवी शैली में इन नियमों का पालन मिलता है। हिंदी में कुतुबन, मुल्ला दाउद, जायसी, उस्मान, मंझन, शेखनवी, कासिमशाह, नूरमुहम्मद आदि कवियों ने मुहम्मद साहब और उनके अनुयायियों की अपने साहित्य में प्रशंसामय स्तुति की है।

महद- (शाहेवक्त की प्रशंसा) फारसी की मसनवी शैली के प्रबन्धकाव्यों में समसामयिक बादशाह की प्रशंसा को महद कहा जाता है। स्वंतत्र काव्य रूप में यह महदख्वानी कहलाती है और मसनवी में शाहेवक्त की प्रशंसा।

गुरूस्तुति- फारसी के मसनवी शैली में गुरू, पीर, औलिया आदि की भी प्रशंसा और स्तुति अपनी रचना में अनिवार्य रूप से करते हैं। हिन्दी में मुल्लादाऊद, कुतुबन, मंझन, जायसी, उसमान और शेखनवी आदि कवियों के साथ ही दक्खिनी हिंदी के कवियों ने भी अपने काव्यों मे इस परम्परा का पालन किया है।

फारसी मसनवी शैली के प्रबन्धकाव्यों को प्रमुख चार वर्गों में बांटा गया है-

(क) विशाल महाकाव्य।

(ख) पर्याप्त विस्तार वाले प्रेमाख्यानक काव्य।

(ग) पर्याप्त विस्तार वाले साधारण आख्यानक काव्य।

(घ) समय विशेष को लेकर लिखी गई कथाएँ।

फिरदौसी कृत 'शाहनामा' संसार के श्रेष्ट महाकाव्यों में शामिल किया जाता है। इसमें केवल छंद-विधान ही मसनवी पद्धति पर है। मसनवी की अन्य विशेषताओं का इसमें प्रायः अभाव है। पर्याप्त विस्तार वाले प्रेमाख्यान काव्यों

में फिरदौसी कृत 'युसुफजुलेखा' प्राचीनतम रचना है। इसमें मसनवी शैली के प्रायः सभी लक्षण पाये जाते हैं। फारसी प्रेमाख्यानक मसनवी शैली पर भारत में भी अनेक रचनाएँ लिखी गयी हैं। जिनमें अमीर खुसरो और अबुल फजल फैजी की कृतियाँ महत्वपूर्ण मानी जाती हैं।

छंद के रूप में मसनवी शब्द का प्रयोग

हिन्दी सूफी साहित्य में कुतुबन, मुल्लादाउद, मंझन, जायसी आदि सूफी कवियों ने प्रबंध काव्य के प्रणयन में मसनवी शैली को अपनाया है। 16 वीं शताब्दी तक हिंदी सूफी कवियों ने कथानक, छंद आदि के लिए भारत वर्ष की ओर ध्यान अधिक रहा एवं अरब और फारस की ओर कम। मसनवी कहने मात्र से हमारे मन में यह धारणा बन जाती है कि वह प्रेम काव्य है और उसमें सूफीमत का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रचार किया गया है, लेकिन हम पाते हैं कि यह धारणा अत्यन्त भ्रामक है। अमीर खुसरो द्वारा लिखी गई विभिन्न मसनवी शैली की रचनाओं इस भ्रांति का निराकरण हो जाता है। इतना सही है कि मसनवी छंद तुकांत होता है। मृगावती, मधुमालती, पदमावत आदि छंदो की योजना का आधार इन फारसी की मसनवी शैली रही है। वस्तुतः मसनवी फारसी साहित्य की एक काव्य शैली है, मसनवी शब्द का प्रयोग प्रायः प्रबन्धकाव्य के लिये किया जाता रहा है। आकार में बड़ा होने के कारण कवि को पूरी स्वंतत्रता बरतने का अवसर इस शैली में मिलता है। फारस में वीरगाथा, प्रेमाख्यान, धार्मिक तथा उपदेशात्मक काव्यों के लिए मसनवी का सहारा लिया जाता रहा है। मसनवी अपने आप में पूर्ण ग्रंथ होता है। उस ग्रंथ का एक विशेष नाम होता है। प्रेमख्यानों में साधारणतः कवि अपने ग्रंथ का नाम नायक-नायिका के नाम पर रखते थे। उस ग्रंथ में वर्णित विषय को आधार बनाकर भी नाम रखा जाता था। जैसे- साकी नामा।

मसनवी की प्रमुख विशेषताएँ

मसनवी के छंदों में प्रत्येक पद स्वतः पूर्ण और स्वंतत्र होते हैं। वाक्य रचना के दृष्टिकोण से उसमें पूर्ण वाक्य आता है। उसकी दोनों अर्द्धालियाँ समान अन्तयानुप्रास गुण-युक्त होती हैं। कथा के प्रारंभ में ईश्वर, पैगंबर मुहम्मद, मुहम्मद के मित्र, कवि के गुरू और समसामयिक बादशाह की प्रशंसा रहती है। इसके बाद ही

कवि अपनी रचना के मूल को स्पष्ट करता है। इसमें साधारणतः छंदो का परिवर्तन नहीं होता है।

सूफी काव्य मे छंद-विधान

हिंदी के सूफी प्रेम काव्यों में प्रायः दोहा, चौपाई, छंद-पद्धति का प्रयोग हुआ है। नसीर ने षडऋतु-वर्णन के संदर्भ में कवित्त-सवैया का भी प्रयोग किया है। नूरमुहम्मद ने दोहे के स्थान पर बरवै छंद का प्रयोग किया है। सूफी कवियों ने मुक्त काव्यों में, झूलना, कुण्डलियॉ, सोरठा, प्रभृति छंदों का भी प्रयोग मिलता है। कथाकामरूप में मित्र छंद प्रयुक्त है। दोहे-चौपाई मात्रिक छंद है। यह छंद-पद्धति कथा प्रधान वर्णनात्मक प्रबंध काव्यों को अपेक्षित गति और प्रवाह देने में पूर्णतः सक्षम है। अपनी इसी मूलभूत गुणवत्ता के कारण ये छंद अवधी के कवियों को भाएँ। कालीदास के ग्रंथ से लेकर तुलसी, जायसी एवं मध्यकाल में लगभग हिंदी एवं सूफी कवियों ने इन छंदों का प्रयोग स्वतंत्र रूप से किया है। श्लोक लौकिक संस्कृत का प्रतीक रहा है, इसका उदय नए साहित्यिक उत्थान की सूचना है। गाथा का उदय प्रकृति के दूसरे उत्थान की सूचना है। तीसरे उत्थान की सूचना लेकर दोहा, छंद आता है। प्राकृत में भी दोहे छंद का प्रयोग मिलता है।

यद्यपि विचार किया जाय तो इन दोहों में कोई विशेष बात नहीं होती, जिसमें इसे अपभ्रंश का दोहा न कहकर प्राकृत का कहा जाय। वैसे यह दोहा अपभ्रंश का ही माना गया है, जिसे दूहा रूप से जाना जाता है। दोहा छंद का पहले पहल प्रयोग कब हुआ बताना एक कठिन कार्य है।

ईरान के मुस्लिम पूर्व साहित्य में भी तुक मिलाने की प्रथा थी और बाद में फारसी में भी इस पद्धति का प्रयोग होने लगा, जिसका अनुकरण विद्यापति की कीर्तिलता में भी देखने को मिलता है। 6वीं-7वीं शताब्दी तक भारत वर्ष में उत्तर-पश्चिम सीमांत से अनेक नई जातियों का आगमन हुआ और उनके कारण इस देश की भाषा में भी नये-नये तथ्य प्रविष्ट हुए। इसी तरह दोहा छंद भारत में आया।

हिन्दी प्रेमाख्यान परम्परा के कवियों ने प्रेमपीर की अभिव्यक्ति के लिए प्रायः दोहा, चौपाई छंदो को ही माध्यम बनाया। इनके पूर्व अपभ्रंश के कवियों के यहाँ भी इसका प्रचुर मात्रा में प्रयोग मिलता है।

आचार्य हजारी प्रसाद के मतानुसार दोहा और चौपाई का सबसे पुराना प्रयोग सूफी भक्ति काव्य परम्परा में ही मिलता है। भारतीय साहित्य में जो दोहा,

चौपाई, छंद प्रयोग के प्रमाण प्राप्त हुए हैं उनसे ज्ञात हुआ कि दोहा, चौपाई, छंद का सर्वप्रथम भारत में प्रयोग पूर्वी प्रदेश के बौद्ध सिद्धों ने ही किया था। पश्चिमी भारत में पद्धड़िया बन्ध अधिक प्रचलित था और पद्धड़ियों का प्रयोग कभी-कभी चौपाई का अर्थ ले लिया जाता था।

यद्यपि गोरखनाथ की वाणियों में भी इस पद्धति के प्रयोग की जानकारी मिलती है। कबीरदास, चन्दबरदाई, जगनिक का परमालरासौ आदि भक्ति और वीरगाथात्मक काव्य के प्रबन्धों में दोहा, चौपाई छंद का हिन्दी मध्यकालीन साहित्य में प्रचुर मात्रा में प्रयोग मिलता है। स्वयंभू के 'पउमचरिउ' में दोहा, चौपाई की शैली का सुन्दर रूप दर्शनीय है। तुलसीदास ने स्वयंभू के राम काव्य से अरिल्ल छंद अनुसरण किया है। इसमें सोलह मात्राएँ होती हैं, चौपाई का पूर्व रूप अरिल्ल छंद है।

कुतुबन, मुल्ला दाऊद, जायसी, उस्मान, कासिमशाह, नूरमुहम्मद, शेखनवी आदि सूफी कवियों ने अपने प्रबन्धकाव्यों में प्रचुर रूप से दोहा, चौपाई छंद का प्रयोग किया है।

अतः हिंदी सूफी कवियों द्वारा व्यावहारिक रूप से उनके विषय में यह कहा जा सकता है कि सभी सूफी कवियों ने अपनी रचनाओं में एक ही प्रकार के काव्य रूपों का प्रयोग किया है। भाषा अवधी होने से इनके प्रमुख छंद दोहा एवं चौपाई ही रहे हैं। इन छंदों में काव्य लिखने की परम्परा पूर्वी प्रदेशों में ही रही है। भारत के पश्चिमी प्रदेशों की काव्य-पद्धति पद्धड़िया बन्ध थी। परन्तु प्रयोग की मूल प्रथा धत्ता की थी। इस प्रकार अरिल्ल छंद के बाद जो धत्ता दिया जाता था, उसे अपभ्रंश में कड़वक कहते थे। चौपाई और दोहे का सबसे पुराना प्रयोग सरहपाद की रचनाओं मे मिलता है, फिर विष्णु दास, कबीरदास, तुलसी आदि की रचनाओं में यह प्रयोग पाया जाता है।

यदा-कदा बरवै, सोरठा, हरीगीतिका, गीतिका, छप्पय रोला आदि छंदो का भी प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। किसी-किसी सूफी कवि ने दोहे का धत्ता न देकर अन्य छंदो का भी धत्ता दिया है।

प्रतीक योजना

किसी अन्य स्तर की समानुरूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है। अमूर्त, अदृश्य, अश्रव्य, अप्रस्तुत विषय का प्रतीक प्रतिविधान मूर्त, दृश्य, श्रव्य, प्रस्तुत बिषय द्वारा किया जाता है। जैसे-

अदृश्य या ईश्वर, देवता अथवा व्यक्ति का प्रतिनिधित्व उसकी प्रतिमा या अन्य कोई वस्तु कर सकती है।

अतः प्रतीक उस विशेष वस्तु चिन्ह को मानना चाहिए जिसका प्रयोग स्वेच्छा या परम्परा से किसी अन्य अर्थ के प्रतिनिधित्व के लिए होता है। प्रतीकों के प्रयोग से अभिव्यक्ति कों अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट बनाया जाता है। इसके माध्यम से सूक्ष्म को स्थूल रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है, और अपरिचित का परिचय किसी परिचित के आधार पर किया जा सकता है, साथ ही विषय या काव्यर्थ की व्यंजना अभिधा में न करके व्यंग्य रूप में की जाती है। कभी-कभी एक ही शब्द या वाक्य के द्वारा दो विषयों का प्रतिपादन भी किया जाता है। फारसी काव्य में गुल-बुलबुल, शमा-परवाना, आदि प्रतीकों का खूब प्रयोग मिलता है।

सूफी साधना और साहित्य में प्रतीकों का अंतयन्त महत्वपूर्ण स्थान है। फारसी का सूफी काव्य प्रतीकों से भरा हुआ है। सूफियों के रसिक उनके प्रतीक ही रहे हैं, यों तो किसी भी व्यक्ति-भावना में प्रतीकों की प्रतिष्ठा होती है, पर वास्तव में तसव्वुफ में उनका पूरा संसार है। प्रतीक ही सूफीसाहित्य को विशिष्ट बनाते हैं। सूफी प्रेम-साधना में प्रतीकों को श्रेष्ठ माना गया है। उनके साहित्य का सारा वैभव प्रतीकों पर आधारित है।

इश्कमिजाजी वाले प्रतीकों के माध्यम से सूफी कवियों ने इश्कहकीकी की व्यंजना की है। सूफी कवियों ने स्त्री को प्रेम का ही प्रतीक माना है। सूफीयों के यहाँ जो रति का आलंबन है वह प्रेम का प्रतीक है। सूफी चाहे जिस किसी को प्रियतम माने, पर उनका प्रियतम परमात्मा ही है। यहाँ एक बात और स्पष्ट होती है कि जब प्रियतम ही परमात्मा है जो माशुक के रूप में है। माशुक की हर एक अदा और अंग प्रतीक रूप में ग्रहण किया जाता है। इससे प्रेम की व्यंजना कथ्य को प्रभावपूर्ण बना देती है। इस प्रकार हिन्दी सूफी काव्य परम्परा में कुतुबन, मुल्ला दाउद, जायसी, मंझन आदि ने भी जो नखशिख वर्णन किया है उसमें नायिका की केश, राशि, भौंहे, मुखमण्डल आदि के वर्णनों में अप्रतिम सौन्दर्य दिखाई देता है। जैसे-

''नयन जो देखा कंवल का, निरमल नीर शरीर।
हंसत जो देखा हंस या, दसन जोति नग हीर।।'' -(पद्मावत)

पद्मावती के मुख के लिए समस्त पदार्थ दर्पण के समान हैं, उसके नयनों से रूप के कमल, शरीर से निर्मल नीर, हंसी से श्वेत हंस और दशन जोति से

नग-हीरे बनें हैं। रूप-सौन्दर्य की भास्वरता के विविध अंगों के प्रभाव का यहाँ मार्मिक रूप भी दृष्टव्य है। पद्मावती के मुख्य रूप से दो प्रतीक हैं- एक तो अमूर्त और दूसरा मूर्त दोनों लिखित सौन्दर्य के प्रतीक हैं।

अतः सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों या प्रेम प्रतीक परमात्मा के लिए स्त्री पुरूष आदि को अपना आराध्य मानकर प्रतीकों के माध्यम से रचनाएँ लिखी गई हैं। एक साधारण प्रिय और प्रियतमा को ईश्वर की भाँति श्रेष्ठ प्रतीकों के रूप में व्यक्त किया है। पद्मावत जैसे अनेक सूफी प्रेमाख्यान प्रतीकों के सहारे अपनी बुलन्दियों को छू रहे हैं। हालाकि कबीर, सूर, तुलसी, आदि ने भी अपनी रचनाओं मे प्रतीकों की भरमार की है। किन्तु उपलब्धि के शिखर पर केवल सूफी ही रहे हैं। सूर्य, चंद्र, हंस, गंगा, आत्मा, साधना, सम्प्रदाय, शरीर, जल, पवन, आग, प्रेम, पिया, बहुरिया, फकीर, जोगी, आदि पवित्र प्रतीकों के सहारे मध्यकाल एवं उत्तरमध्यकाल जैसे युगों में रचनाओं में मूल प्रतीक ही नजर आते हैं।

चरित्र-चित्रण

सूफी प्रेमाख्यानकों में नायक-नायिकाओं के चरित्रांकन की एक जैसी पद्धति दिखाई पड़ती है। उनमें जीवन के विविध घात-प्रतिघातों का अभाव है। नायक को प्रायः राजकुमार दिखाते हुए उसे सहृदय, साहसी, प्रेमी एवं पर दुःखकातर बताया गया है, जबकि नायिका अनन्य सुन्दरी, रूपगर्विता, बुद्धिमती, राजकन्या के रूप में चित्रित की गई है। प्रायः सभी कवियों ने भारतीय वातावरण एवं मर्यादाओं के अनुरूप नायक-नायिका का चरित्र-चित्रण किया है। प्रेम-पथ की कठिनाइयों का चित्रण करते हुए नायक के चरित्र को उभारने का प्रयास प्रायः सभी सूफी प्रेमगाथाओं में किया गया है। नायक को नायिका के रूप सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट होकर उसे प्राप्त करने के लिए अनेक संघर्षों से गुजरना पड़ता है। ये संघर्ष ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में आने वाले संघर्षों के द्योतक हैं। सूफी प्रेमाख्यान में कुछ मानवेतर पात्र भी हैं यथा- पद्मावत में हीरामन तोता, जिसे एक विद्वान के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कथा का विकास करने में ऐसे पात्रों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

वस्तुतः सूफी कवियों का ध्यान चरित्र-चित्रण पर उतना केन्द्रित नहीं रहा जितना कथा-वैचित्र्य एवं वर्णन विस्तार पर रहा है। उन्होंने ऐतिहासिक एवं काल्पनिक दोनों वर्गों के पात्रों का व्यक्तित्व भी इतिहास के अनुरूप न होकर कल्पना से अधिक निर्मित किया है। कुछ पात्र काल्पनिक होते हुए भी बेजोड़

हैं। 'पद्मावत' की नागमती इसी प्रकार की एक अद्वितीय पात्र है जो भारतीय स्त्री का आदर्श कही जा सकती है।

रस विधान

हिंदी सूफी कवियों मे कुतुबन, मुल्ला दाउद, मंझन, जायसी, उस्मान, कासिमशाह, नूरमुहम्मद आदि की रचनाओं में प्रेम-विषयक तत्व ही प्रधान रहा है। प्रेम में प्रेम-व्यापारों का वर्णन होने के कारण उनकी भाव-व्यंजना पद्धति की सीमा भी स्वभावतः वहीं तक पहुँची है जहाँ तक उसके अनुरूप समर्थ भावों का प्रश्न आ सकता है। सूफियों ने प्रेम के विरह पक्ष को विशेष महत्व दिया और इसी कारण जितना ध्यान उन्होंने प्रेमी एवं प्रेमिका के वियोग उसकी अवधि में झेले जाने वाले विविध कष्टों तथा उनका अंत करने के उद्देश्य से किए गए विविध प्रयत्नों के वर्णन की ओर दिया है, उतना उसके अंतिम मिलन को भी नहीं दिया है। वस्स्तुतः विरह की दशा, वह मनः स्थिति है जिसमें रहते समय अपने सारे जीवन को ही प्रेम-पात्र के प्रति नितांत एक निष्ठ बना देना पड़ता है। संयोग या वियोग के अनुभव में उतनी तीव्रता नहीं रह जाती और न इसी कारण इसमें किसी प्रकार की गति शेष रहती है। विरह के भाव में एक विचित्र अंतः प्रेरणा निहित रहती है जो प्रेमी या प्रेमिका को कभी चैन की सांस नहीं लेने देती है। प्रेमी आगे बढ़ने का प्रयत्न करता है मार्ग में अनेक विपरीत परिसथितिया.आती हैं जिसमें वह संघर्षों से जूझता है, घबराता नहीं। प्रिय के मिलने की आकांक्षा लेकर कांटों की राह पर भी वह उत्साह पूर्वक चला जाता है।

सूफी काव्य परम्परा कुतुबन, मुल्ला दाउद, मंझन, जायसी, उस्मान, कासिमशाह, नूरमुहम्मद आदि कवियों की रचनाओं में भावब्यंजना के क्षेत्र में बारहमासा और प्रकृति-वर्णन को महत्व दिया है। प्रत्येक मास के प्राकृतिक वातावरण से विरह की तीव्रता उस ऋतु के विपरीत प्रभाव उत्पन्न करती है। इस तरह बारहमासा, विरह-वेदना की तीव्रता का प्रभाव उत्पन्न करने के लिए सभी सूफी प्रबन्ध काव्यों में समान रूप से अपनाया गया है। इन वर्णनो के प्रसंग में बारहमासा विरह प्रायः सर्वत्र भारतीय साहित्य की अवधारणा के रूप में सूफी काव्य में प्रयुक्त हुआ है। जहाँ फारसी साहित्य की काव्य रूढ़ियों का प्रभाव विकशित हुआ है, वहॉ वर्णन अतिश्योक्तिपूर्ण हो गए हैं। जायसी के पात्रों के नयनों से रक्त के आँसू बह पड़ते हैं। ऐसे स्थानों पर स्वभाविकता के बदले अत्युक्ति स्थान लेने लगती है। इन कवियों के संयोगावस्था के वर्णन या तो भोग

विलास पूर्ण हैं या कहीं रहस्यपरक। प्रेमतत्व की व्याख्या, सौन्दर्य की लोकोत्तर कल्पना, प्रेमतत्व की अपूर्वता, अखण्डता, कहीं-कहीं साम्प्रदायिक सिद्धांतों का परिचय आदि का भी पूरा-पूरा परिचय इनकी रचनाओं में मिलता है। हिन्दी सूफी काव्यों के नायक प्रायः राजा या राजकुमार हैं- वे शौर्य, उत्साह अपसमृद्धि आदि से सम्पन्न हैं। ये प्रायः धीरोदात्त नायकों की कोटि में आते हैं। कई काव्यों में ये नायक धीरोदात्त और धीरललित के समन्वित रूप में भी उपस्थित हुए हैं। अन्य नायिका से प्रेमोदय के पूर्व विवाहित होते हैं। नायिका का चित्र देखकर या रूप गुण की प्रशंसा सुनकर या स्वप्न में उसे देखकर उनके हृदय में प्रेमोदय होता है। इन कवियों ने नायिकों के एकांत प्रेम-भाव की दृढ़ता का जमकर चित्रण किया है। नायक को त्यागी, कुलीन, समृद्धशाली, रूपयौवन उत्साह समृद्ध, दृढ़, दक्ष, लोकरंजक, तेजस्वी और शीलवान चरित्र में प्रकट किया गया है।

हिंदी सूफी प्रेमाख्यानों की नायिकाएँ प्रायः राजकुमारियाँ हैं। वे अत्यंत रूपमती एवं विदुषी हैं। उत्तरी और दक्खिनी दोनों प्रेमाख्यानकों की नायिकाएँ राजवंश से संबंधित हैं। ये अलौकिक सत्ता की प्रतीक हैं तथा अत्यंत सुन्दर एवं सर्वगुण सम्पन्न भी हैं। इनके चित्रण में कवियों ने स्वकीया के भावों का चित्रण किया है।

इन कवियों के काव्य में उद्दीपन विभाव के संदर्भ में वन, पर्वत, सागर, चंद्र चाँदनी, प्रातः, सायं, ऋतु, भ्रमर, कोयल, पपीहा, चंदन, सर, सरिता, उपवन, बाग, तड़ाग, सखी, सखा, धूप-छाया आदि के वर्णन किए गए हैं। नायिकाओं के नख-शिख वर्णन भी उद्दीपन विभाव के अंतर्गत आते हैं। नायिकाओं से नख-शिख या रूप सौन्दर्य के माध्यम से भी भावोद्दीपन का कार्य संपन्न कराया गया है। इनकी रचनाओं में संयोग व वियोग ही केन्द्र में रहा है, जो निश्चित ही श्रृंगार रस के अंतर्गत आता हैं।

भाव एवं रस व्यंजना

प्रेम, सूफी कवियों का मूल प्रतिपाद्य है। इनकी रचनाओं में श्रृंगार रस की प्रधानता रही है। श्रृंगार के दोनों ही पक्षों संयोग एवं वियोग का प्रभावपूर्ण चित्रण इन प्रेमाख्यानकों में किया गया है। सौन्दर्य निरूपण के अन्तर्गत नायिका के नख-शिख, रूप-रंग, हाव-भाव का चित्रण करने के साथ-साथ उसकी विद्वता, बुद्धिमत्ता एवं कला विशारद का उल्लेख भी किया गया है। संयोग श्रृंगार के अंतर्गत रूप चित्रण की प्रधानता रही है। नायिका का अद्भुत सौन्दर्य वस्तुतः

परमात्मा का ही नूर है, अतः संपूर्ण सृष्टि में उसी का आभास उन्हें होता है। संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत नायक-नायिका के मिलन का चित्रण करते हुए काम-क्रीड़ा का वर्णन भी किया है, जिससे कहीं-कहीं अश्लीलता आ गई। वियोग वर्णन के अन्तर्गत इन्होंने बारहमासा की योजना की है। पद्मावत में नागमती के विरह की सुन्दर अभिव्यक्ति बारहमासा के द्वारा जायसी ने की है। यह विरह वर्णन हिन्दी काव्य की अनूठी निधि है। श्रृंगार रस के अतिरिक्त अन्य रसों की योजना भी इन काव्य ग्रन्थों में की गई है। उदाहरण के लिए पद्मावत में गोरा-बादल युद्ध खण्ड के अन्तर्गत वीर, रौद्र एवं वीभत्स रसों का सुन्दर चित्रण किया गया है।

श्रृंगार रस

श्रृंगार रस के उभय पक्षों का वर्णन इनके काव्यों में मिलता है पर प्रधानता वियोग, संयोग की ही है, क्योंकि इसी के माध्यम से इन कवियों ने आत्मा और परमात्मा के विरह की अभिव्यक्ति की है। जैसे-

"पिउ-बियोग अस बाउर जीऊ। पपिहा निति बोलै पिउ पीऊ।।
अधिक काम दाधै सो रामा। हरि लेइ सुबा गएउ पिउ नामा।।
बिरह बान तस लाग न डोली। रकत पसीज, भींजि गइ चोली।।
सूखा हिया, हार भा भारी। हरे हरे ङ्मान तजहिं सब नारी।।"

-(पद्मावत)

संयोग रस

यद्यपि सूफी काव्य में वियोग श्रृंगार प्रधान है, पर इनमें संयोग श्रृंगार का भी पूरा-पूरा वर्णन हुआ है। षडऋतु वर्णन का आयोजन इन कवियों ने संयोग श्रृंगार के उद्दीपन की दृष्टि से ही लिया है।

विप्रलंभ श्रृंगार

जब तक साधक (प्रिय) वियोगाग्नि में तपकर निखरता नहीं, तब तक प्रिय से संयोग नहीं होता। ईश्वर (प्रियतमा) से मिलन भी तभी संभव है जब जीव सांसारिक वासनाओं से ऊपर उठे। सूफी काव्य साधना की एक विशिष्ट पद्धति की दृष्टि से लिखे गए हैं। इस कारण उनमें विरह को विशेष महत्व दिया गया है और विरह का विस्तृत चित्रण भी किया गया है। निजामी के 'लैलामजनूँ' में

मजनूँ मृत्यु पर्यान्त विरह में तड़पता ही रहता है। खुसरो के 'शीरी-फरहाद' में फरहाद भी विरह में तड़प-तड़प कर मर जाता है। यह पंजाब की प्रेम कहानी सूफी काव्य का आधार बनी है।

वियोग श्रृंगार का पद्मावत में विशद चित्रण मिलता है। पद्मावत में नागमती और पद्मावती दोनों के विरह-चित्रण मिलतें है। इसी पृष्ठभूमि के आधार पर वेदना का इतना मार्मिक, गंभीर, पवित्र और प्रभुविष्णु वर्णन सचमुख अत्यन्त दुर्लभ है। जायसी का एक-एक दोहा भाव का अगाध सागर जान पडता है -

"सारस जौरी कौन हरि, मोरी बिधाया लीन।
झुरि-झुरि हों पींजर भई, विरह काल मोहिदीन।।
जिन्ह घर कंता ने सुखी, तिन गारो और गर्व।
कन्तपियारा बाहिरे, हम सुख भूला सर्ब।।
परबत सुमद आगमविच, बीहढ घन-बन दांख।
किमि के भेतो कन्द तुम्ह, ना मोहि पांव न पॉख।।" -(पद्मावत)

यद्यपि हिंदी सूफी काव्यों में मुख्यतः श्रृंगार, वीर और करूणारस का ही सुंदर वर्णन हुआ है। लौकिक और आध्यात्मिक प्रेम के बहाने भक्ति रस की भी सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। सूफी काव्यों मे हास्यरस का प्रायः अभाव है। श्रृंगार, वीर, और करूण रसों की व्याप्ति इनके काव्यों में प्रायः सर्वत्र है- इनमें संबंधित भावों का उत्कर्ष, रस परिपाक की स्वाभाविकता, प्रेमभाव व प्रेमानुभूति की तीव्रता हिंदी सूफी काव्यों के रंस प्रसंग में विशिष्ट आर्कषण के केन्द्र हैं।

प्रेम-विरह का महत्व

सूफी साधना का मूलाधार प्रेम है। प्रेम ही उसका संबल है और प्रिय ही उसका प्राण है। प्रेम में विरह-वेदना उसे इतनी ही प्रिय है जितनी कि प्रिय की प्राप्ति। प्रिय जैसे भी प्रसन्न हो, प्रेमी को वैसा ही करना उसका कर्तव्य है। प्रेमी या सूफी साधक प्रिय में अपने अस्तित्व को मिला या मिटा देता है। बिना 'फना' (अहं का विनाश) 'फक्द' (आत्मभाव) और 'शुक्र' (उन्माद) 'वका' (ईश्वर की प्राप्ति) और 'वज्द' संक्षेप में कहें तो इनमें प्रेम ही खुदा है और खुदा ही प्रेम है। संसार की प्रत्येक सुन्दर वस्तु परमात्मा के स्वरूप का ही संकेत है।

सूफियों की प्रेमभक्ति भारत के लिए कोई अनजानी या नई वस्तु नहीं है। वैष्णव साधना के अनेक सम्प्रदायों, तांत्रिक शैव मतों और यहाँ तक कि मूलतः

प्रेम शून्य जैन एवं बौद्ध मतों में भी उस कालखण्ड में प्रेम की आँधी चल रही थी। यह प्रेम-प्रवाह भौतिक मार्ग से अभौतिकता की ओर जा रहा था। प्रेम की ऐसी वर्षा हो रही थी कि किसी भी साधना-मार्ग को उससे बचकर निकालना संभव नहीं रह गया था। जहाँ भारतीय पद्धति की प्रेमसाधना मर्यादाओं में बँधी थी, वहीं सूफी प्रेमपद्धति मादकता से पूर्ण होकर उसकी सीमा का अतिक्रमण कर रही थी। जहाँ भारतीय प्रेमाभिव्यक्ति शील-संकोच और अधिकांशतः मौन या सांकेतिक हाव-भाव-समन्वित अल्पभाषिता की प्रशंसिका है, वहीं सूफी प्रेम-साधना की अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक मुखर है और साथ ही कहीं-कहीं अश्लीलता और विभत्सिता तक पहुँचती है। जहाँ भारतीय पद्धति के प्रेम का चरमोत्कर्ष मिलन में है, वहाँ सूफी प्रेम की पूरी सार्थकता ही विरह-साधना पर अवलम्बित है। जहाँ भारतीय मिलनोत्सुक प्रेमाभक्ति में विरह बाधक माना गया है, वहीं सूफी साधना में विरह ही आराध्य है। मिलन विरह की आरम्भिक मंजिल मात्र है, जिसकी परिणति विरह में ही होती है।

अलंकार विधान

काव्य में अलंकारो का महत्वपूर्ण स्थान है। दण्डी, भामह, उदभट् और केशव प्रमुख अलंकारवादियों ने तो यहाँ तक कहा है कि काव्य में अलंकार प्राण कहलाते हैं। भूषण के बिना कविता, वनिता और मित्र शोभा ही नहीं देते। अलंकार का स्रोत बड़ा व्यापक है। कहने के ढंग भिन्न और अनेक हैं और उनके प्रकार भी अनेक हैं। हिंदी सूफी काव्यों के अप्रस्तुत विधान में प्रायः परम्परागत सादृश्य योजना मिलती है। रसात्मक संदर्भो में इन कवियों ने प्रायः भावानुरूप सुंदर अप्रस्तुत योजना की है। कभी-कभी इनकी अप्रस्तुत योजना में बाँधा भी दिखाई देती है। कुछ कवियों ने फारसी पद्धति को भी इस संदर्भ में अपनाया है। कवि नूर मुहम्मद ने आँखों के लिए 'नरगिस' के फूल का उपमान चुना है। नल-दमनन्ती में 'बोलत पीक परगत सब देखा'।

सूफी काव्य परम्परा में कुतुबन, मुल्ला दाउद, मंझन, जायसी, उस्मान, कासिमशाह, नूरमुहम्मद आदि कवियों ने प्रायः सादृश्य मूलक अलंकारो का ही अधिक प्रयोग किया है। भारतीय कवियों के यहाँ कर्ण, दधीचि, बलि, विक्रम आदि को उपमान रूप में ग्रहीत किया जाता है, जायसी ने उमर सुलेमान, हातिम, अलि आदि जैसे उपमानों का प्रयोग किया है। सिंह को अरबी भाषा में हमजा

कहते है, जायसी ने उपमान के रूप में इसका प्रयोग किया है। आखिरी कलाम फारसी में नायिका के गले के लिये सुराही की उपमा दी जाती है। जायसी ने भी इसका प्रयोग किया है।

मुल्लादाऊद, कुतुबन, मंझन, जायसी आदि ने स्वरूप-बोधन के लिए तथा भावव्यंजना को अधिक तीव्र बनाने के लिए सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रसूत परिमाण में सफल प्रयोग किया है। जायसी कृत पदमावत्, चित्ररेखा और कहरनामा में इसका सफल प्रयोग मिलता है। इन रचनाओं मे उपमा, उत्प्रेक्षा, और रूपक के अच्छे से अच्छे प्रयोग भी मिलते हैं। शब्दालंकारों में इन कवियों को अनुप्रास, यमक और श्लेष विशेष प्रिय हैं। अनुप्रास तो इन सूफी कवियों के यहाँ अपने चरम वैभव पर दृष्टव्य मिलते हैं। जैसे-

"कहुकि- कुहुकि जस कोरल रखा।।
मामादों दूभर अति भारी।।
मामोदों दूभर अति भारी।
पपिहा पीउ पुकारत पावा।
मिला न बिछुरा जुरान वूटा।
कर कंगन भर पहर कलाई।" -(मलिक मुहम्मद जायसी)

अतिश्योक्ति

हिंदी सूफी काव्यों में अतिश्योक्ति अलंकार इन कवियों का हथियार माना जाता है। मधुमालती, इन्द्रावती, अनुरागबांसुरी में उपस्थित कुछ अतिश्योक्ति अलंकारों का खूब प्रयोग देखने को मिलता है। जायसी की अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन अवश्य अत्यंत मनोहर हैं रूप का अतिश्योक्ति भेद में भी अभेद के द्वारा उन्होंने ऐसी मनोहर और रमणीय वस्तुएँ सामने रखी हैं, कि हृदय सौन्दर्य की भावना में मुग्ध हो जाता है। रतनारि नेत्रों के बीच घूमती हुई पुतलियों की शोभा की ओर कवि इस प्रकार इशारा करता है-

'रोते कंवल करहिं अलिभवां। घूमहिं भाति चहहिं अपसवां।'

कोमलता, सुकुमारता, सुन्दरता आदि की व्यंजना के लिए भी इस अलंकार का प्रयोग उचित स्थानों पर किया गया है। साथ-ही-साथ व्यतिरेक, प्रतीक, संदेहालंकार, दृष्टांत, दीपक आदि अलंकारों को सूफी काव्य में उचित स्थान प्राप्त हुआ है। कहीं-कहीं इन सूफी कवियों ने फारसी परम्परा से प्रभवित होकर फारसी

काव्य से उपमानों को लिया है। उत्तरी परम्परा में नूर मुहम्मद फारसी काव्य और इस्लाम के अधिक अनुकरणीय रहें है।

हिंदी सूफी कवियों में कुतुबन, मुल्ला दाउद, मंझन, जायसी, उस्मान और नूरमुहम्मद के अलंकारो के प्रयोग में दक्ष रहे हैं।

प्रकृति-चित्रण योजना

सूफी भक्ति के प्रबन्धकाव्यों में आलंबन और उद्दीपन के लिए तथा नायिका रूपी मुर्शिद के अनन्य सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए, विरह और प्रेम की दशाओं के सचित्र और मार्मिक वर्णन के लिए, काव्य नायक राजकुमार की राजकुमारी को प्राप्त करने के लिए यात्राओं की दुर्गमता का वर्णन तथा मिलन और प्रेम की दशाओं के चित्रण में प्रकृति के उपादानों का यथा योग्य कथानक की दृष्टिकोण से कथा प्रवाह की तीव्रता में वृद्धि करने के लिए प्रयोग किया गया है।

अपनी भाषा अभिव्यक्ति के चरमोत्कर्ष के लिए प्रायः कवि प्रकृति के उपमानों को अलंकार के रूप में ग्रहण करते हैं। प्रकृति के उपमानों के माध्यम से सौन्दर्य को अधिक तीव्र, गौड़ और प्रमुख अभिव्यक्ति देने में समर्थ हुए। कवियों ने उपमा, उत्प्रेक्षा रूपकादि के द्वारा अपने प्रतिपाद्य विषय में सौन्दर्य लाने के लिए सारी सृष्टि के उपादानों को काव्यमय बना देता है। वह चंद्रिका-चर्चित चंद्रमा में सुंदर मुख के जैसा पवित्र भाव पाता है। उनकी आँखें मृगनयनी जैसी सुदीर्घ नेत्रों की मधुरता की अनुभव करती हैं। मदमस्त कुंजर की गति में प्रियममा की गति का प्रत्यक्षीकरण करता है। सावन की कजरारी घटा में घुँघराली केशराशि को देखता है। इस प्रकार उपमानों की सहायता से प्रकृति में चेतन सौन्दर्य का जीवन्त आरोप किया गया है।

यद्यपि आलंबन, उद्दीपन और अलंकरण रूपों के ही अंतर्गत प्रकृति-चित्रण के रूप में वैविध्य को समेटा जा सकता है, किन्तु यहाँ हम हिंदी सूफी कवियों द्वारा किए गए प्रकृति-चित्रण को अध्ययन की सुविधा के लिए निम्नलिखित शाखाओं के अंतर्गत रख सकते हैं-

1. उपमान रूप में किया गया प्रकृति-चित्रण
2. वातावरण की निर्मित के लिए किया गया प्रकृति-चित्रण
3. आध्यात्मिक अभिव्यक्ति और ईश्वरीय वैभव के रूप में किया गया प्रकृति-चित्रण

4. उपदेश और नीति के रूप में किया प्रकृति-चित्रण।

5. मानवीय हर्ष विषादादि की अभिव्यंजना के लिए किया गया प्रकृति-वर्णन।

6. उद्दीपन रूप और विप्रलंभ श्रृंगार।

मलिक मुम्मद जायसी की कृति पद्मावत में प्रकृति-चित्रण का अनोखा रूप प्रस्तुत किया गया है। जैसे-

"प्रथम वसंत नवल ऋतु आई। सुऋतु चौत बैसाख सोहाई।।
चंदन चीर पहिरि धरि अंगा। सेंदुर दीन्ह बिहँसि भरि मंगा।।
कुसुम हार और परिमल बासू। मलयागिरि छिरका कबिलासू।।
सौंर सुपेती फूलन डासी। धनि औ कंत मिले सुखबासी।।
पिउ सँजोग धनि जोबन बारी। भौंर पुहुप संग करहिं धमारी।।
होइ फाग भलि चाँचरि जोरी। बिरह जराइ दीन्ह जस होरी।।
धनि ससि सरिस, तपै पिय सूरू। नखत सिंगार होहिं सब चूरू।।"

-(पद्मावती)

6

और अन्त में!

यद्यपि सूफीमत की भी जन्मभूमि फारस की है, पर जहाँ इस्लाम धर्म की तलवार अपनी करामात दिखा चुकी थी और इसके साधक तथा अनुयायी भी मुसलमान ही थे तथापि अपने उदार दृष्टिकोण एवं आचार-शुद्धता के प्रति आग्रहशील होने के कारण वे जनसामान्य से कुछ अलग थे। वे स्वभाव से सहनशील, उदार, एकान्तप्रिय और समन्वयवादी थे। ये धार्मिक उन्माद, कट्टरता, असहिष्णुता से अपने को सर्वोत्तम और दूसरे को हीनदृष्टि से न देखने वाले, धर्म के नाम पर हिंसा आदि के घोर विरोधी, योग प्रेम एवं ज्ञान के साधक और प्रेमी जीव थे। इसीलिए वे धर्मान्ध मुसलमानों की दृष्टि में कांटे की तरह खटकने वाले और काफिर थे। अपने उदार दृष्टिकोण के कारण वे मुसलमान होकर भी अपने देश में भी उत्पीड़ित व शोषित हुए और वहाँ से निष्कासित हुए। बुतपरस्त कहलाकर भी वे ऐसे नहीं थे, कुफ्र से भी दूर थे, और फाँसी के फंदे पर से झूलकर भी अपने सिद्धान्त पर दृढ़ थे। भारत का वातावरण इनके लिए अनुकूल सिद्ध हुआ, इसलिए यहाँ आकर उन्होनें इस्लाम का सुसंस्कृत और शान्त रूप समाज के समक्ष केवल प्रस्तुत ही नहीं किया वरन् हिन्दू-मुसलमान दोनों की अपनी ओर आकर्षित किया।

सूफी सम्प्रदाय का भारतीय समाज पर उल्लेखनीय, प्रशंसनीय और स्पृहणीय प्रभाव पड़ा था। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच की खाई काफी कम हुई थी। जहाँ हिन्दुओं ने मुसलमानों को विधर्मी, काफिर, विजातीय, आततायी, दुराचारी, विध्वंसक, क्रूर, लुटेरा, घोर, शत्रु, घृणित, नास्तिक और इसी प्रकार न जाने किन-किन विशेषणों से युक्त शब्दों द्वारा सम्बोधित

किया है तथा तदनुरूप व्यवहार किया, वहीं मुसलमानों ने भी हिन्दुओं को बुतपरस्त, काफिर, गुलाम, कायर और अन्य सम्बोधनों से अलंकृत किया। परन्तु इस उदार एवं समन्वयवादी सम्प्रदाय ने दोनों की दूरियों को कम करने का भरपूर प्रयास किया और वे सफल भी हुए।

धर्मोन्माद और विजेतापन का अहंकार जैसे-जैसे कम होता गया, मुसलमानों ने भी सूफियों की अच्छाइयों तथा उपलब्धियों की ओर ध्यान देना आरम्भ किया। फलतः परस्पर सौमनस्य का वातावरण सृजित हुआ। दोनों धर्मावलंबियों ने एक दूसरे के साहित्य तथा धर्मग्रन्थों का गहन अध्ययन-मनन आरम्भ किया और एक-दूसरे के बीच वैचारिक आदान-प्रदान का वातावरण बना।

'सूफी साधना' सिद्धान्त मानव-भाव की प्रेम-प्रधान साधना है। सूफी जगत के कण-कण और सम्पूर्ण प्रकृति में उसी परमशक्ति की सत्ता मानते हैं। ईश्वर ने सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण किया है तो फिर भेदभाव की बात कहाँ से पैदा होती है? क्योंकि हम सब उसी की संतान हैं। प्रत्येक जीव के साथ प्रेम का व्यवहार करके ही सूफी परमात्मा को प्राप्त करना चाहते हैं।

भारत में सूफी सम्प्रदाय आकर एक नये रूप में विकसित हुआ, जो ईरान और अरब के सूफीवाद से पूर्णरूप से भिन्न था। भारत में आकर सूफीमत में संगीत और नृत्य समाहित हो गये, सूफीमत का यहीं से भारतीयकरण हुआ। हिन्दी सूफी काव्य में प्रेम की अभिव्यंजना उनके सम्प्रदाय या मत से उत्पन्न होती है, और उनका मत या सूफीमत इस्लाम की कट्टरता की प्रतिक्रिया द्वारा इस्लाम की ही क्रोड़ से जन्मा था। तत्कालीन इस्लामी शासकों की कट्टरता, धर्मान्धता और विलासिता के साथ ही राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक पारस्थितियाँ भी इस मत के अविर्भाव में सहायक रही हैं। अतः सूफी मत इस्लामी तत्व ज्ञान का मानवीय विकास है। पश्चिमी विचारकों ने सूफीमत का अविर्भाव एवं उनकी प्रेममय साधना पर यूनानी, ईसाई, अफलातूनी के प्रभावों को ही महत्वपूर्ण माना है। भारतीय प्रभाव को वे इस मत के विकास की स्थिति में ही स्वीकार करते हैं और मानते हैं कि इस मत के विकास में भारतीय प्रभाव की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इसके अतिरिक्त सूफियों ने कुरान और हदीस की ईश्वर और सृष्टि विषयक मान्यताओं को स्वीकार किया है, और उनका अर्थ भी स्पष्ट किया है। उन्होंने अल्लाह, खुदा, ईश्वर, परमात्मा, विश्वभर, निरंजन, विष्णु, शिव, सिरजनहार, करतार, रहीम, सबकों उसी ईश्वर के नाम बताये हैं। भारतीय सूफीयों ने हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, फारसी आदि

के भेदों से ऊपर उठकर विश्वात्मा का संदेश दिया। सूफी संत भारत आये और यहीं के होकर रह गये। इन्होंने अपनी साधना में भारतीय साधनाओं एवं साधनों की अनेक विशेषताओं को लिया और दिव्य प्रेम का संदेश देते हुए बताया कि प्रेम के द्वारा ही उस विश्वात्मा की झाँकी मिल सकती है। 14 वीं शताब्दी से लेकर 20 वीं शताब्दी तक के वर्षों को सुदीर्घ अवधि में सैकड़ों सूफी काव्यों से हिन्दी साहित्य समृद्ध हुआ है।

साहित्य और संस्कृति की अनेक धाराएँ हिन्दी सूफी काव्य में दिखायी देती हैं। अनेक परम्पराओं, धर्मों, दर्शनों, साधनाओं आदि ने सूफी काव्य को भारतीय सामग्री प्रदान कर इसका भारतीयकरण किया।

सूफी संतो ने अपनी प्रेम-वाणियों से भारतीय लोक मानस पर अधिकार प्राप्त करने का प्रयास किया। आमने-सामने करके अजनबीपन मिटाने वालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा। इन्होंने मुसलमान होकर हिन्दू की कहानियाँ हिन्दुओं की ही बोली में पूरी तरह से कहकरके उनके जीवन में मर्मस्पर्शी की अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखाया।

सूफी भक्ति के लगभग सभी कवि भौतिक प्रेम के द्वारा ईश्वरीय प्रेम का प्रतिपादन करते हैं। सूफी के सभी कवि मुसलमान ही हुए, लेकिन इनको हिन्दू सभ्यता और संस्कृति का पूर्ण ज्ञान होता था। इन कवियों ने हिन्दुओं की ऐतिहासिक लोक प्रचलित कथाओं में कल्पना का पुट देकर, एक नवीन कथा का प्रादुर्भाव किया तथा इसे ही अपनी भक्ति का साधन बनाया। इस काव्य का लक्ष्य कभी सामाजिक खण्डन-मण्डन नहीं रहा। केवल प्रेममार्ग के द्वारा ईश्वर-प्राप्ति ही इनकी कविता का ध्येय रहा। सूफी भक्ति में माया के स्थान पर शैतान को महत्व दिया गया है। सूफी काव्य की भाव व्यंजना अपना विशेष महत्व रखती है। इन कवियों ने मानव हृदय के अत्यन्त सूक्ष्म भावों तक पैठ कर, रति और शोक इत्यादि के अत्यन्त भावपूर्ण और मार्मिक वर्णन किये हैं, जिसमें रस की पूर्ण अभिव्यक्ति समाहित है। संतों के रहस्वाद जैसी नीरसता इसमें नहीं थी।

देखा जाय तो सूफी प्रबन्ध काव्य साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दु-मुस्लिम संस्कृति का समन्वय और ऐक्यता का मार्ग प्रशस्त करता है। यही काम हिन्दु संत कवि कबीर, रविदास तथा गुरूनानक आदि कवियों ने किया। वास्तव में सूफी कवियों ने हिन्दु, मुस्लिम संस्कृतियों को एक-दूसरे के अधिक निकट पहुँचाया है।

इन संतो ने धर्म और मजहब से ऊपर उठकर मनुष्यत्व का परिचय दिया है। इनके काव्यों मे प्रेम-पीर की स्निग्ध पुकार है, विरह की प्रशांत-गंभीर तड़प है, आत्म-समर्पण का परम पुनीत आग्रह है- इसलिए यह काव्य हमारे हदयों को सहज की छू कर झंकृत कर देते हैं। इन संतों का उद्देश्य संकीर्णताओं से ऊपर उठकर आत्मशुद्धि और जन-जीवन में प्रेम-संदेश का प्रसार करना मुख्य ध्येय था। इसी उद्देश्य की सफलता सूफी काव्य में निहित है। सूफीमत की विशेषता रही है कि वह कभी जीवन की उपेक्षा करके नहीं चला। सूफीमत की विशेषताओं और परिभाषाओं से ज्ञात होता है कि यह मत पूर्ण रूप से आत्मानुशासन, व्यक्तित्व के लोप और ईश्वरत्व को जाग्रत करने का नाम है। सूफी साधक हृदय की निर्मलता और आत्मशुद्धि का सतुत प्रयत्न करता रहता है। ईश्वरीय वैभव और सौन्दर्य से पूर्ण प्रकृति का कण-कण उसे मौन-मुखर प्रेम संदेश प्रदान करता है। ईश्वर साधना इनका प्रमुख ध्येय था तथा प्रेम मूलमंत्र था। तौहीद-एकेश्वरवाद पर इनकी आस्था थी। इन कवियों ने जीवन को प्रेममय बनाने का संदेश दिया। सूफी साधना प्रेम पर आधारित प्रेम मूलक, प्रेमानुभूति का मार्ग है। लौकिक प्रेम का समन्वय करके उसे दिव्य प्रेम की भूमिका पर प्रतिष्ठित करना सूफी साधना की चरम परिणति है। सूफी संतों ने दिव्य प्रेम के माध्यम से विश्व प्रेम का संदेश दिया। यह मानव ही नहीं, अपितु प्राणीमात्र के लिए वरदान स्वरूप है। भारतीय कथाओं में प्रेम के लौकिक रूप के दर्शन होते हैं, पर सूफी प्रेमाख्यानों में एक आध्यात्मिक प्रेममूलक अर्थ भी व्यंजित होता है। सूफी कवियों ने भारतीय जीवन और चिंतनधारा को बड़ी गहराई से प्रभावित किया है।

जायसी ने दर्शन एवं भाषा के स्तर पर भी उदारतापूर्वक समन्वय किया है। इनकी दार्शनिक चेतना में वेदान्त के अद्वैतवाद, बौद्धों की करूणा, जैनों की अहिंसा, नाथों की नैतिकता और योगदर्शन का अद्‌भुत सामंजस्य हुआ है।

सूफीमत के अनुसार नाना नाम, रूप आदि पदार्थ मूलतः परमात्मा द्वारा ही सृजित है। क्या फरसी और क्या हिंदी, दोनों सूफी काव्य प्रतीकों से भरा हुआ है। इनमें प्रतीकों का चरम वैभव देखा जा सकता है। अलौकिक प्रणयानुभूति को लौकिक में बदलने या व्यक्त करने में सरलता होती है। अतः प्रतीकों के माध्यम से इन कवियों ने उसे स्पष्ट किया है। परम्परा के कारण हिंदी सूफी कवियों की रस भावाभिव्यंजना प्रायः रूढ़िगत ही दिखायी देती है। इन काव्यों में श्रृंगार के उभय पक्षों का पूरा-पूरा वर्णन मिलता है।

सूफी कवि सही अर्थो में जनकवि थे। उत्तर भारत के सूफी कवियों ने ठेठ अवधी में जनता की वोली को काव्य की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया है। 15वीं शताब्दी से 20वीं शताब्दी तक की जीवन्त अवधी भाषा इनके काव्य का श्रृंगार है। दक्खिनी हिंदी के सूफी कवियों की भाषा आधुनिक खड़ी बोली का पूर्व रूप है। इसमें अरबी-फारसी शब्दों का पर्याप्त प्रयोग हुआ है, हिन्दी के संपूर्ण सूफी काव्य में मुहावरों, लोकोक्तियों, कहावतों का सूफियों द्वारा किये गये प्रयोग से व्यंजना की वृद्धि हुई है। हिन्दी सूफी काव्य में प्रयुक्त कथानक, रूढ़ियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इनका ढॉचा प्रायः एक जैसा है, इनमें प्रेम, विवाह के पूर्व ही प्रारंभ होता है, और अंत तक चलता है। कथानक रूढियों का इन कवियों ने बहुत आश्रय लिया है। ये कथानक रूढ़ियाँ लोकाश्रित और कवि कल्पित दोनों प्रकार की दिखायी देती हैं।

इसके अतिरिक्त हिंदी सूफी कवियों के सामने एक ओर लैला-मजनू, शीरी-फरहाद, ऊषा-अनिरूद्ध, दुष्यंत-शकुन्तला, नल-दमयंती, माधवानल-कामकदला आदि के साथ ही सती-मैना, पद्मावती, मधुमालती आदि की भारतीय प्रेम कथा की परम्परा थी। हिन्दी साहित्य में अपभ्रंश के चरित्रकाव्यों की भी परम्परा रही है। सूफी कवियों ने चरित्रकाव्यों और प्रेमगाथाओं दोनों का सुंदर समन्वय किया है। इन कवियों ने भारतीय जन जीवन से पोषण तत्व लिया है। साहित्यिक सौष्ठव और कलात्मक उत्कर्ष की दृष्टि से हिन्दी सूफी काव्यों मे से कई काव्य हिंदी के श्रेष्ट प्रबंध काव्यों की अंग्रिम पंक्ति में आते हैं। हिंदी सूफी काव्यों में मसनवी पद्धति और भारतीय प्रबंध काव्य के तत्वों का मणि-कॉचन योग मिलता है। इनमें कथा, आख्यायिका, चरितकाव्य, प्रबंधकाव्य, धर्मकथा, मसनवी आदि की विशेषताएँ मिलती हैं। मसनवी पद्धति को उन्होंने ग्रहण किया है पर उनका अनुकरण नहीं किया है। चूकि ये काव्य यहाँ की धरती और परिवेश में लिखे गये हैं, इसलिए फारसी से प्रभावित होने पर भी भारतीय लोक और गंभीर काव्य की परम्पराएँ इनमें मिलती हैं। इनके कथानक अधिकांशतः भारतीय ही हैं।

ये हिन्दु और मुस्लिम संस्कृतियों का पावन संगम हैं। प्रेमाख्यान, नीति, उपदेश, काव्य-शास्त्र, रीतिग्रंथ, इतिहास, भूगोल, ज्योतिष, वैद्यक, रत्नपरीक्षा (संस्कृत, अरबी, फारसी, और तुर्की भाषाओं से) अनुवाद आदि उनके काव्य के विविध विषय हैं।

अतः हिंदी सूफी काव्य का आध्यात्मिक पक्ष प्रेम-साधना से सम्बद्ध है। इन साधकों ने परमतत्व की प्रेममय परिकल्पना की है। प्रेम ही उनकी साधना

का सर्वस्व है। वे प्रियतम की ज्योति से ही संपूर्ण संसार को पवित्र रूप में देखते हैं। संसार और उनका सौन्दर्य उसी के ज्योति से प्रकट है और उसी में समाहित है।

निष्कर्षतः यह सूफी भक्ति का वास्तविक रूप है, जिसे भारतीय समाज में स्थापित करने के लिए प्रेम के तसव्वुफ के द्वारा सूफी प्रेम को कहानियों के माध्यम से हिन्दी सूफी काव्य परम्परा के द्वारा समझाया गया है। भारतीय सूफी मत में दो धाराएँ स्पष्ट रूप से दिखायी देती हैं। एक सूफी संतों और फकीरों, पीरों की परम्परा, जो भारतीय समाज को सीधे प्रभावित करते थे। इनमें ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती, बाबा फरीद, निजामुद्दीन औलिया आदि प्रमुख संत थे। इनमें हिन्दी सूफी काव्य परम्परा के सूफी रचनाकारों में एक नवीन विशेषता उजागिर हुई, जिसमें सूफी प्रेम को समझानें लिए समाज के समक्ष, समाज में प्रचलित कहानियों को सूफी भक्तिमय करके कृति के रूप में प्रस्तुत किया गया। इस परम्परा में कुतुबन, मुल्ला दाउद, मंझन, उस्मान, कासिमशाह, शेखनवी, नूरमुहम्मद और जायसी का पद्मावत शामिल किया जाता है। हिन्दी सूफी काव्य परम्परा की सभी कृतियों में मुख्य धारा के सूफी संतों का प्रेममार्ग, उनका फकीराना अंदाज तथा समाज के विभिन्न वर्गों की जातियों के साथ प्रेम की समदृष्टि के व्यावहारिक पक्ष को रचनाओं के केन्द्रीय तत्व के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। इस प्रकार सूफी संत परम्परा और हिन्दी सूफी काव्य परम्परा इन दोनों धाराओ को जबतक एक साथ विचार करते हुए, इनके मूल तत्वों का विश्लेषण नहीं किया जायेगा, तब तक हिन्दी सूफी काव्य परम्परा की प्रेम कहानियाँ भक्तिकाल की गम्भीरता धारण नहीं कर सकती। इस अर्थ में सूफी संत परम्परा का साहित्यिक रूप हिन्दी सूफी काव्य परम्परा के रूप में दिखायी देता है।

अंततः हम यह कह सकते हैं कि हिन्दी सूफी प्रेमाख्यानक काव्य परम्परा में अधिकतर रचनाएँ प्रबन्ध काव्य के रूप में लिखी गयी हैं। सम्पूर्ण हिन्दी सूफी रचना साहित्य में पद्मावत को हिन्दी इतिहास और आलोचना में महाकाव्य के रूप में माना है। भारतीय महाकाव्य की कसौटी पर पद्मावत अनेक अर्थ में महाकाव्यत्व को धारण नहीं करता, क्योंकि भारतीय महाकाव्य के लिए निर्धारित शास्त्रीय लक्षणों का इसमें अभाव है। भारतीय काव्य शास्त्र के सिद्धांतों पर पद्मावत कुछ कमजोर कृति के रूप मे माना गया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पद्मावत को फारसी की मसनवी शैली का भारतीय महाकाव्य घोषित किया है। सूफी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानक ग्रंथों

में लौकिकता को छोड़ते हुए अलौकिकता का वर्णन किया है। हिन्दी आलोचना ने इसे समाशोक्ति के रूप में स्वीकार किया है। हिन्दी सूफी काव्य परम्परा का प्रतिनिधित्व मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत करता है। पद्मावत की कथावस्तु और घटनाक्रम की प्रतिकात्मकता, इसे एक प्रेमाख्यानक महाकाव्य बनाती है। लोकप्रियता की दृष्टि से भारत में जन-जन में विख्यात पद्मावती के सौन्दर्य चित्रण पर आधारित कहानी को जायसी ने आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध को परिभाषित करने के लिए, आत्मा को रतनसेन और परमात्मा को पद्मावती के रूप में इस महाकाव्य में विरचित किया गया है। पद्मावती का रूप सौन्दर्य का अलौकिक चित्रण तोता रूपी गुरू के द्वारा, रतनसेन के समक्ष उद्घाटित किया जाता है तो रतनसेन या प्रेम में विह्वल एक आत्मा अपने गुरू के द्वारा बतलाए गये, परमात्मा के सौन्दर्य के अलौकिक चित्रण के वशीभूत होकर उससे अनन्य प्रेम करने लगती है। यह प्रेम इतना तीव्र है कि मार्ग में आने वाली किसी भी कठिनाई को पार करके, वह पद्मावती रूपी परमात्मा का साहचर्य पाने को अपना सब कुछ छोड़कर निकल पड़ता है। आत्मा की परमात्मा की ओर यात्रा को सामान्य जन भारतीय समाज के समक्ष लौकिक कहानी के माध्यम से सूफी रचनाकारों ने प्रस्तुत किया। इन रचनाओं में भक्ति और भक्ति के अलौकिक पक्ष के साथ मानवीय जीवन के स्त्री-पुरूष प्रेम और सौन्दर्य को नयी अभिव्यक्ति मिली है। सूफी काव्यधारा के पूर्व निर्गुण भक्तिधारा में भारतीय परिवेश में जिस स्त्री को भक्ति मार्ग की सबसे बड़ी रूकावट नरक का द्वार ठहराते हुए, स्त्री के बिना ईश्वर की प्राप्ति करने के मार्ग बताये गये थे। भारतीय समाज और साहित्य में सूफी भक्तिधारा ने, उसी भारतीय स्त्री को ईश्वर के अनूठे सौंदर्य के रूप में पद्मावती तथा अन्य कहानियों की नायिकाओं के अनुपम सौंदर्य के रूप में प्रतिष्ठित किया। चाहते तो सूफी भी स्त्री की उपेक्षा भारतीय भक्ति धाराओं से प्रभावित होकर कर सकते थे, लेकिन सूफीयों ने अपने भक्ति मार्ग में समाज और सत्ता की राजनीति स्वीकार नहीं की। सूफी भक्ति धारा की रचनाओं में प्रेम का जो भारतीयकरण किया गया है, वह विश्व स्तर पर अनुकरणीय है। जिस इस्लाम से निकलकर सूफी काव्यधारा भारत पहुँची, उस इस्लाम की कट्टरता, परदा-प्रथा और स्त्री को उपभोग्या मानने की विचारधारा का कोई प्रभाव सूफीयों पर नहीं दिखता है।

हिन्दी सूफी साहित्य में प्रेम के द्वारा जीवन, समाज और ईश्वर तक को सुलभ रूप से पाया जा सकता है। इतने विस्तृत प्रेम को पहली बार भारत भूमि

पर प्रस्तावित और परिभाषित किया गया। हिन्दी साहित्य आधुनिक इतिहास में छायावाद में जिस प्रेम के खुलेपन और आत्मीयता के साथ, प्रेम की मानवीयता पूरातन भारतीय सामाजिक रूढ़ियों को तोड़कर, स्वतंत्रता की वकालत करती है, छायावाद की यह प्रेममयी आंधी सूफी भक्तिधारा का नया संस्करण नहीं तो और क्या है!

छायावाद से प्रसूत मानवीय प्रेम और संवेदना जिस ईश्वरीय अनुभूति को भक्ति का नाम लिए बगैर, हृदय में अनुभव के तार झनझनाती है, तो इन तारों से उत्पन्न प्रेम का संगीत सदियों पहले भारतीय समाज में सूफी भक्तिधारा से प्रारम्भ हुआ था।

हिन्दी छायावाद का सम्बन्ध सूफी भक्ति से न मानकर, बंग्ला भाषा के रास्ते पश्चिम के स्वच्छंदतावाद (रोमेन्टिसिज्म) से जोड़ा गया। हिन्दी आलोचना की प्रमाणिकता और संवेदनशीलता यहीं पर संदिग्ध हो जाती है, जब छायावाद के प्रेम को पश्चिम स्वच्छंदतावाद (रोमेन्टिसिज्म) से जोड़ा जाता है, और भारतीय हिन्दी सूफी प्रेम को खारिज किया जाता है। हिन्दी के छायावादी प्रेम के दो सौ वर्ष पूर्व, पश्चिम के स्वच्छंदतावाद (रोमेन्टिसिज्म) से छायावाद का सम्बन्ध उचित प्रतीत होता है और भारतीय जन-मानस को उद्वेलित करने वाली प्रेममार्गी सूफी काव्यधारा का इन्हें स्मरण भी नहीं आता।

भारतीय साहित्य परम्परा के इतिहास का अवलोकन करने पर, जो रोचक तथ्य मानवीय प्रेम के संदर्भ में उभरकर सामने आते हैं, उनसे स्पष्ट होता है कि भारतीय सांस्कृतिक और साहित्यिक परम्परा में प्रेम हमेशा संदेह और अपराध की श्रेणी में दण्डनीय माना गया है। ये परम्परा हिन्दी साहित्य में ही नहीं, वरन् उसके पूर्व संस्कृत साहित्य में भी मिलती है।

भारतीय साहित्य परम्परा में ईस्लाम की सूफी भक्ति धारा ने प्रेम को जीवन की जरूरी और पवित्र पक्ष के रूप में उद्घाटित कर सामाजिक रूप से प्रेम को भारतीय संस्कृति में और साहित्य में प्रमाणिक रूप में स्थापित किया।

वेदों, उपनिषदों और शंकराचार्य तथा पुराण-साहित्य में विशेषतः 'श्रीमदभागवत पुराण' के दशवें अध्याय आदि में निर्गुण और सगुण भक्ति के बीच द्वन्द की दीर्घ परम्परा तो दिखायी देती है। पर, निर्गुण और सगुण दोनों के मध्य समन्वय की विराट चेष्टा लेकर भारत में सूफी भक्तिधारा का आगमन हुआ और इसने भारतीय समाज में द्वैत और अद्वैत के द्वन्द को अपने आध्यात्मक स्वरूप से गहरे स्तर पर प्रभावित किया। सूफी भक्ति मार्ग ने उद्धव और गोपीकाओं के बीच निर्गुण-सगुण के द्वन्द का समाधान प्रस्तुत किया। यहाँ यह स्पष्ट है कि सूफी भक्ति धारा निर्गुण और सगुण दोनों के समन्वित रूप में भारत में विकसित हुई। भारतीय साहित्य परम्परा के तीन हजार वर्ष के इतिहास में और पृथ्वी पर समूची मानव जाति को मानवीय प्रेम के मार्ग से ईश्वर तक ले जाने वाली धारा 'सूफी' भक्ति मार्ग है, इससे बेहतर मानवी जाति के पास भक्ति का कोई विकल्प नहीं है।

- इसी पुस्तक से